लेखक—

स्वामी केवलानन्द सरस्वती

[प्रति] २०००]   सं० १९८६ वि०   [मूल्य ॥)

भूलों को भूलो

लेखक—

स्वामी केवलानन्द सरस्वती

प्रकाशक—

स्वा० श्री दुर्याबगिरि जी

निगम आश्रम गंज दारानगर

संशोधक—

पं० सुखदेव शर्मा शास्त्री

मुद्रक—

ला० श्यामसुन्दरलाल मैनेजर भारत प्रिंटिंग प्रेस मुजफ्फरनगर
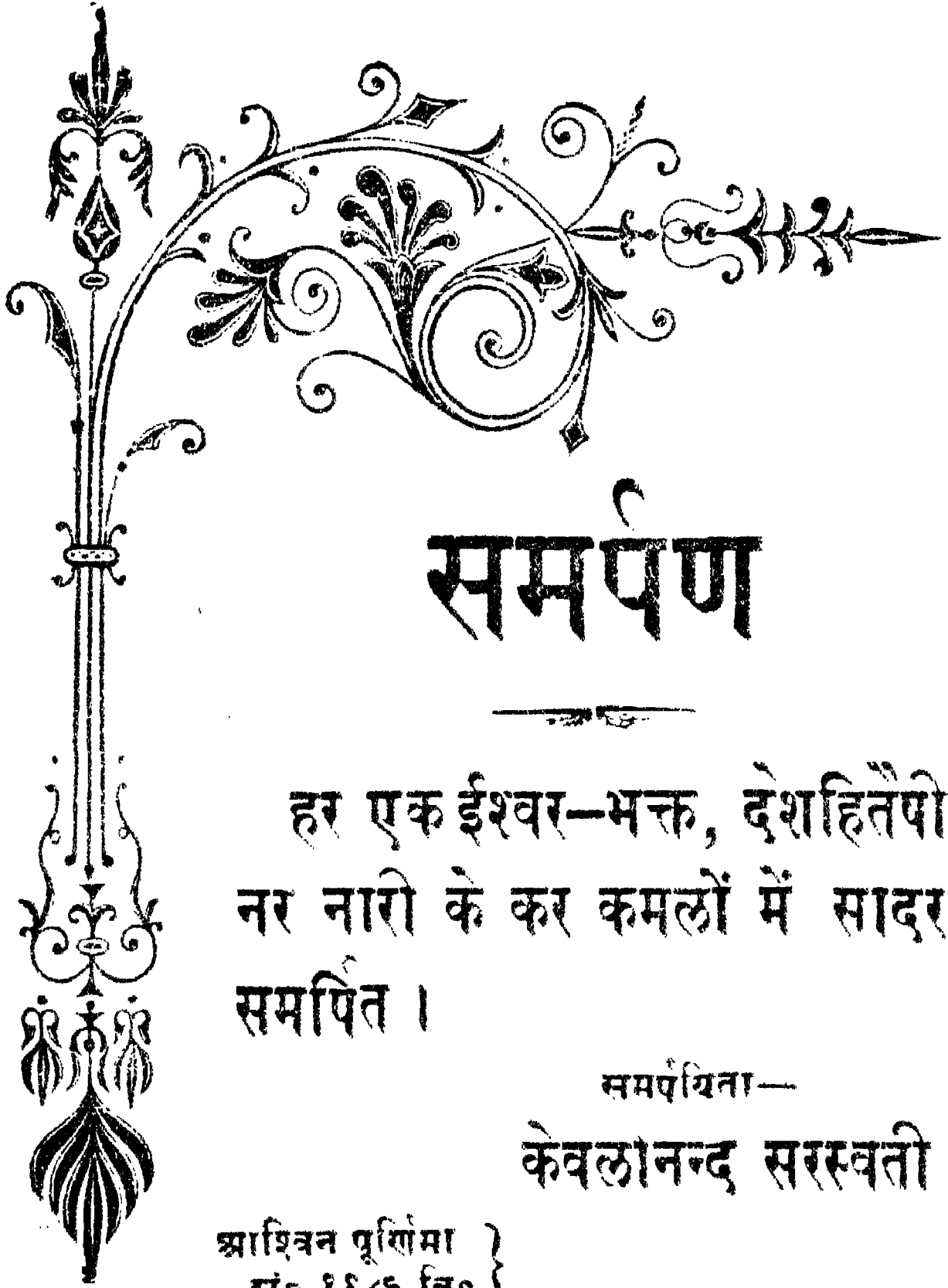
समर्पण

हर एक ईश्वर-भक्त, देशहितैषी नर नारी के कर कमलों में सादर समर्पित।

समर्पयिता—

केवलानन्द सरस्वती

आश्विन पूर्णिमा
सं० १९८६ वि०

११५२

॥ ओ३म् ॥

नमो नमः सर्व विधात्रे जगदीश्वराय

भूमिका

प्रिय पाठक ! मुझे यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि, जो पुस्तकमाला आपके समक्ष हाथों में दृष्टि गत होरही है वह एक आदर्श, शान्त संन्यासी के भक्ति भाव और धर्म अनुराग का ही परिणाम है। आर्य्य समाज के अन्दर बहुत कम पुस्तकें ऐसी होंगी जिन्होंने ऐसे गूढ़ विषय को इतनी सरस एवं सरल भाषा में प्रकाशित किया हो। इस माला का सब से पहला मोती 'भूलों को भूलो, है जो श्री स्वामी केवलानन्द जी महाराज के मनोहर उपदेश, कथा तथा निबन्धों का सचित्र संग्रह है। आर्य्य पुरुष यह जानकर प्रसन्न होंगे कि पुस्तक के अप्रकाशित होते हुए भी निरन्तर मांगों पर माँग आरही हैं। अस्तु !

अत; अनेक सज्जनों के अनुरोध से अब इस को आर्य्य भाषा में मुद्रित करा आर्य्य जनता के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक जो श्री पूज्य पाद स्वामी केवलानन्द जी महाराज के हृदय से निकले हुए उपदेशों और लेखों का संग्रह है भली भांति आर्य्य संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करेगी और देवियों के लिये भी वैसी ही उपयोगी सिद्ध होगी जैसी कि पुरुषों के लिये।

पाठक! यद्यपि पुस्तक का विषय उसके अपने नाम से ही विदित है इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं तथापि मेरा अपना परम कर्तव्य है कि मैं उसके सम्बन्ध में दो शब्द अवश्य अपनी तुच्छ लेखनी से लिखदूं। सब से पूर्व पुस्तक रचयिता ने इस बात का विशेष ध्यान रक्खा है कि पुस्तक सर्व साधारण के हाथ में दिखाई पड़े।

अतः पुस्तक आर्य्य भाषा में लिखी गई है। उसमें सब लोगों की बुद्धि कृतकारी होसकेगी। इतने पर भी छन्द, दोहा आदि से पुस्तकको बड़ा सुगम कर दिया है क्यों कि संस्कृतस्थ विषय विद्वान् लोग ही समझ सकते थे साधारण नहीं। इसमें सामान्य विषय जो कि आजतक हमारी जितनी भूलें हैं उनका भूलने के लिए यथोचित प्रबन्ध करदिया गया है। पुस्तक ११ तरङ्गों में समाप्त की गई है। इस में प्रथम मङ्गलाचरण ईश्वर स्तुति तदनन्तर पुस्तकीय विषय क्रमशः लिखा गया है।

अन्त में पाठकों से विनम्र प्रार्थना रूप से निवेदन करता हूं कि "स्वाध्याय ही जीवन है" इस कहावत को आप लोग कब चरितार्थ करेंगे। मेरा अपना तो अनुभव है कि स्वाध्याय से मनुष्य के जीवन में विचित्र फल होता है। मनुष्य जीवन के उद्देश्य की पूर्ति का मुख्य साधन यही है। बिना स्वाध्याय कोई भी पुरुष अपने हिताहित की विवेचना ठीक नहीं कर— सकता। अतः 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'-को न भूलिये बस, मैं अन्त में श्रीस्वामी जी के पुरुषार्थ एवं विद्वत्ता के लिये धन्यवाद करता हुआ परमात्मा से प्रार्थी हूं कि वह हम लोगों में ऐसा आत्मिक उत्साह, शक्ति दे जिस से हम भवसागर से तरजांय।

भवदीय-शुभेच्छुः—

शुकदेव शर्म्मा शास्त्री विद्या भूषण,

मु० संस्कृत अध्यापक,

डी० ए० वी हाई स्कूल मुज़फ्फ़रनगर।

मुज़फ्फ़रनगर

आश्विन पूर्णिमा सं० १९८६ वि०

यद्यपि, "सर्वः सर्वं न जानाति" इस सर्व-सम्मत सिद्धान्त के होते हुए, मुझे इस पुस्तक के विषय में विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । तथापि यह निश्चित बात है कि जिस सद्भाव से मैंने इसे लिखा है, यदि पाठक महानुभाव उसी भाव से अवलोकन करेंगे तो अधिक लाभ होगा । इस पुस्तक के विषयों का पुरातन धार्मिक ग्रन्थोंसे, "आधाराधेय" सम्बन्ध है अर्थात् जो भी कुछ इस में लिखा गया है वह सब ऋषि मुनियों के उदार आशय को लेकर ही लिखा गया है । क्योंकि हमारा कल्याण इसी में है कि हम अपने पूर्वज ऋषि मुनियों का कथन स्वीकार करके, उनके पद चिन्हों पर चलें । तभी देश तथा जाति का उत्थान हो सकता है अन्यथा नहीं । इस पुस्तक के संशोधन का भार, श्री पं० शुकदेव जी शास्त्री ने अपने ऊपर लिया है इस के लिये मैं आप को सहर्ष धन्यवाद देता हूं, किमधिकं मति मत्सु ॥

निगम आश्रम
गञ्ज दारानगर ज़ि० बिजनौर

शुभेच्छुः—
केवलानन्द सरस्वती

॥ ओं तत्सत् ॥

अथ मंगलाचरणाम्

ओं स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्र मसाविव ।
पुनर्ददताघनता जानता सङ्गमेमहि ॥ ऋ० ५।५१।१५

भावार्थः—हे कल्याणप्रद परमेश्वर ! आप की कृपा से हम लोग सूर्य और चन्द्रमा की तरह कल्याणयुक्त मार्ग के अनुगामी बनें । एवं दानशील, अहिंसक भावों से भरपूर विद्वान् (गुरु) के साथ शुभ संगति से लाभ उठाया करें ।

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभि र्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ् सस्तनूभि र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ ऋ० मं १ । ८५ । २१ ।

भावार्थः—हे विचारशील विद्वानो ! आइये हम सब प्रभु की कृपा से अपने कानों द्वारा कल्याण की बातें सुनें, और आंखों से कल्याण के कमनीय दृश्य देखें । एवं सबल अङ्गों वाले शरीरों द्वारा, आराध्यदेव की भव-भञ्जनी भक्ति करते हुए योगी जनों द्वारा धारण की जाने वाली आनन्दावस्था को प्राप्त करें ।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्रथम तरंग

॥ उपक्रम ॥

भूलों की भरमार के, भूल भयानक भेद।
'केवल' मान महेश को, दूर करो भ्रम खेद॥

सम्वत् १९८४ विक्रमीय के कार्त्तिक मास की पूर्णिमा का दिन है, महात्मा जनों के विगतरज हृदय की भांति, आज कल का आकाशमण्डल साफ़ और सुथरा प्रतीत हो रहा है। मधुर गति से बहने वाला गङ्गोदक भी अपनी पवित्रता के कारण ऐसा ही लोचनानन्ददायी मालूम होता है, जैसा कि वेदोक्त सिद्धान्त। जिस प्रकार ब्राह्मणों का दीन वचन शोभित नहीं होता, ठीक इसी प्रकार इन दिनों मयूरों की केका वाणी भी आनन्दोत्पादक नहीं है। किसान लोगों ने भी अपनी श्रावण की फ़सल काट ली है, और हल का हलका फल पा चुके हैं। एवं अगली फ़सल के लिये भूमि को कमा कर बीज बो दिया है। विगत वर्षों की तरह आज भी गङ्गा स्नान की शुभ इच्छा से नर नारियों के वृन्द, दूर निकट शहरों तथा ग्रामों से चल कर (गढ़-दारानगर) के समीप पतितपावनी भागीरथी के परम पुनीत पुलिन पर एकत्रित हो रहे हैं, और इस स्थान को एक सुन्दर मेले का रूप दे रक्खा है।

अपने अपने सिद्धांतों के अनुसार, अनेक सभा, सोसायटी प्रचार कर रही हैं, और श्रोता गण बड़े प्रेम से सुन रहे हैं। बाज़ार की सजावट और अपने अपने फ़ैशन की दिखावट में सब लोग लगे हुए हैं। कहीं पुलिस के सिपाही मेले के प्रबन्ध

में व्यग्र हुए घोड़े दौड़ाये घूम रहे हैं। तो कहीं सेवासमिति वाले नवयुवक विराट भगवान् की सेवा से अपने कर्त्तव्य को पूरा कर रहे हैं। खेल तमाशे वाले लोग, दर्शक जनों के मन को मोहित कर के, जेब ख़ाली करा रहे हैं। ऐसे विपुल जन समुदाय के दर्शन मेले का संपूर्णतया वर्णन करना, इस मन्द-गति वाली लेखनी से बाहिर की बात है। इस लिए विशेष न लिखते हुए, हम अपने प्रिय पाठकों का ध्यान, स्वाभिलषित लक्ष्य की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। सायङ्काल का समय है. भगवान् भास्कर भी अपनी प्रखर किरणों से अन्धकार पटल को छिन्न भिन्न कर चुकने पर संसार को उन्नति तथा अवनति का उपदेश देते हुए अस्ताचल को प्राप्त हो रहे हैं।

फिर क्या था! जिस प्रकार प्रजारञ्जन, धर्मधारी राजा के न रहने से, वञ्चक-समुदाय चारों ओर से निस्सहाय प्रजा को आकर घेर लेता है, ठीक इसी प्रकार दिन-नायक के न रहने से अन्धकार समूह भी चारों ओर से आकर, इस मेले के रङ्ग में भङ्ग करने लगा। प्रकृति इस विषमता को देख कर, जनता को अपने अपने घर के दीपक याद आने लगे। बस तत्काल ही किसी ने मशाल, किसी ने लैम्प, किसी ने गैस के हण्डे जला कर रख लिये, और इस अभाव की पूर्त्ति करनी चाही। पर ऐसा कब हो सकता था। गङ्गा के रेतीले फ़र्श पर बसने वाली जनता का मानसिक तार, मन के देवता, निशाकर के पास पहुंचा। कुछ ही देर के बाद वे भी आगये, और अन्धकार की सघन सेना को तितर बितर करते हुए, आकाशरूपी ऊंचे सिंहासन पर बैठ कर, पुण्य प्रभा रूपी विजय-पताका फहराने लगे। जिस प्रकार किसी देश हितैषी उदार हृदय तपस्वी कार्यकर्त्ता को अपना नेता समझ कर, परतन्त्र प्रजा, अपने

जन्म सिद्ध अधिकारों को प्राप्त करने के लिए तन मन धन से उस की सहायता किया करती है, ठीक इसी प्रकार, अपने पूज्य नेता चन्द्र देव की कीर्तिलता को सुरक्षित रखने के लिये तारागण भी विपुल उत्साह से चारों ओर चमक चमक कर दमकने लगे। कहां तक कहें, आकाशमण्डल के इस प्राकृतिक सौन्दर्य ने कविता-कामिनि कान्त कवियों को अपनी स्तुति पाठ के लिये भाट बना दिया।

लेखक के हृदय में भी इस सुहावने समय ने एक उत्कण्ठा उत्पन्न कर दी। अतएव इस दृश्य को देखने के लिये, अपनी निवास कुटी से चल कर विपुल जन-सागर में प्रवेश किया। और थोड़ासी देर में ही बाज़ार की शोभा को देखता हुआ, भागीरथी के तट पर जा पहुंचा। वहां दीपावली की अनुपम ज्योति ने और ही कुछ गुल खिला रक्खा था। दीपक छटा क्या थी, प्रतीत होता था कि जनता के जयकारे सुनने की उत्कण्ठा से, आकाश बिहारी तारागण ही महि-मण्डल पर मोद मुदित हो कर मुस्करा रहे हैं। इसी अवसर में लेखक की दृष्टि, एक अनुमित ३०-३२ वर्ष के आयुष्मान् युवा पुरुष के ऊपर पहुंची, जो कि गेरू के रङ्ग में रङ्गे हुए स्वदेशी खद्दर के वस्त्र धारण किये हुए था। जेब में कुछ क़ागज़ और पेन्सिल पड़ी हुई थी। पहाड़ी लकड़ी का मोटा और मज़बूत एक डण्डा भी पास रक्खा था। एक ओर कमण्डलु और मुण्डित मुण्ड, इस के साधु पन को दूर से ही जता रहे थे। क्योंकि लेखक भी साधु है इस लिए अपना साम्य मिलाने के लिए इस की ओर गौर से देख ही रहा था कि इतने में ही एक अनुमित ७० साल की अवस्था वाला ग्राम्य वृद्ध, जिस ने तनियोंदार अङ्गरखा पहना हुआ है और सिर पर गाढ़े की पगड़ी बांध

रक्खी है एवं घुटनों तक आने वाली धोती पहनी हुई है, हाथ में लोटा लिये आपहुंचा, और गङ्गाजी में हाथ-मुख धो कर आचमन कर चुकने के बाद गङ्गा जी से बद्धांजलि बोला:—

(गङ्गा मय्या ! खबर नहीं, और क्या क्या सुन कर मरना होगा । तू कैसी सो गई, जो इतने पर भी करवट नहीं लेती) इतना कह कर एक लम्बा श्वास लिया और कुछ देर ज्यों का त्यों खड़ा रहा ।

वृद्ध के ये शब्द उस बैठे हुए युवक संन्यासी तथा लेखक के हृदय में बिजली के समान असर कर गये । जब वृद्ध वापिस चलने लगा तो उस साधु ने कहा,—) कहिये बड़े जी ! अभी जो आप ने गङ्गा जी से हाथ जोड़ कर कहा था कि "पता नहीं क्या क्या सुन कर मरना होगा" सो क्या बात है । आइये बैठिये)

यह सुन कर वृद्ध भी साधु के सन्मुख (नमो नारायणाय) कह कर बैठ गया । इधर लेखक ने भी कुतूहल वश इन दोनों के वार्तालाप को सुनने की इच्छा से पास ही आसन जमा लिया । न मालूम अब इन दोनों के संवाद में कौन सी तरङ्ग उठेगी ? अच्छा जो भी होगी , हम अपने प्रिय पाठ कों को अवश्य सुना येंगे ।

द्वितीय तरंग

(आर्य्यावर्त्त और आर्य शब्द की व्याख्या)

साधु ने वृद्ध की ओर संकेत करके कहा।

कहिये ? बड़े जी वह क्या बात थी ?

वृद्ध—महात्मा जी ? क्या कहूं कुछ कहते नहीं बनता। मैं कई वर्षों के बाद आज गङ्गा स्नान की इच्छा से यहाँ आया हूं, अब की बार जो २ बातें मैंने सुनी हैं, ऐसी पहिले कभी नहीं सुनी थीं। न मालूम दुनियां के लोग किस तरफ़ को जारहे हैं। मैं दोपहर के समय गङ्गा स्नान करके मेले में घूम रहा था। घूमता २ एक सभा मण्डप में चला गया। जिस मण्डप के दर्वाजे पर मोटे अक्षरों में लिखा था। (आर्य समाज) सामयाने के नीचे मेज के पास खड़ा हुआ एक आदमी भजन गारहा था। (कोई आओ, लूट लेजाओ, धर्म्म धन खड़े लुटाते हैं। हम करके सब से प्यार ज्ञान गङ्गा में न्हवाते हैं) बस मैं धर्म्म का नाम सुनकर, तख्त के पास ही जाकर बैठ गया। क्यों कि उस समय सुनने वाले बहुत कम थे, परन्तु थोड़ी सी देर में ही एक खासी भीड़ जमा होगई। मेरे चारों ओर आदमी ही आदमी दिखलाई देनेलगे। और उस भजनीक ने धर्म्म का नाम ले लेकर सारी बातों का खूब खण्डन किया। सुनने की इच्छा न होते हुए भी मुझे सब कुछ सुनना पड़ा। क्यों कि सबके बीच से उठना मैंने उचित नहीं समझा। फिर मेज के पास ही कुरसी पर बैठे हुए एक आदमी ने खड़ा

होकर कहा (सज्जनों ? अब वेद शास्त्रों के परम विद्वान् पण्डित जी महाराज अपना मनोहर व्याख्यान आप लोगों को सुनायेंगे । अतः आप लोग ध्यान से सुनें और लाभ उठावें) तत्काल ही एक नङ्गे शिरवाले पण्डित ने खड़ा होकर, ऐसी ऐसी बातें सुनाईं जो कभी मैंने स्वप्न में भी नहीं सुनी थीं ।

सब लोग बड़े गौर से सुन रहे थे । कोई कान तक भी नहीं हिलाता था । मालूम होरहा था कि ये सब लोग इसकी बातों से सहमत हैं । मुझे सभा में बोलना नहीं आता, नहीं तो मैं उसकी बातों का विरोध ज़रूर करता । पर, किया क्या जाय, होनहार ही ऐसी थी ।

साधु—अच्छा बड़े जी, अब यह सुनाइये कि उस पण्डित ने क्या २ बातें कहीं । क्योंकि शास्त्रों में यह लिखा है कि सुनने के बाद मनन अर्थात् विचार करना चाहिये । सुनी सुनाई बातों को विचार रूपी मथानी से मथने पर, सद्भाव रूप नवनीत मिला करता है । तीर्थों में आने का यही तो फल है ।

वृद्ध—साधु जी ! क्या कहूं, उस ने तो सब से पहिले तीर्थ और मठ मन्दिरों का ही खण्डन किया । फिर बताओ उन की बात कैसे सुनें, क्या हमें नास्तिक बनना है ।

साधु—आख़िर कुछ मण्डन भी तो किया होगा, या सभी बातों का खण्डन कर रहा था, जो जो बातें उस ने बतायी थीं कृपया उन्हें आप सुनाइये ।

वृद्ध—अजी ! उसने तो सभी बातों का खण्डन ही खण्डन किया ।

साधु—ऐसा तो कभी नहीं हो सकता, जो सभी बातों

का खण्डन किया हो। मैंने भी कई बार उन की बातें सुनी हैं। वे लोग बुरी बातों का खण्डन तथा अच्छी बातों का मण्डन किया करते हैं। आप एकतर्फा ही डिगरी न करें।

वृद्ध—बस महाराज? आप भी आर्य्य समाजी मालूम होते हैं। तभी तो ऐसी बातें करते हो।

साधु—जी हाँ, मैं आर्य्य तो अवश्य हूं। परन्तु आर्य्य समाजी नहीं हूं। क्यों कि आर्य्य समाज के रजिस्टर में न तो मेरा नाम है और ना मैं आर्यसमाज में नियम पूर्वक जाता ही हूं।

वृद्ध—फिर आप अपने आपको आर्य क्यों कहते हो?

साधु—जितने मनुष्य अपने आपको (भूल के कारण) हिन्दू कहते हैं, उनका पुराना नाम आर्य ही तो है और इस देश का नाम भी प्राचीन ग्रन्थों में (आर्यावर्त्त) ही लिखा मिलता। क्या? आपने किसी सनातनी पण्डित के मुख से, संकल्प पढ़ते समय नहीं सुना (जम्बू द्वीपे भरत खण्डे आर्यावर्त्ते) यवनराज्य के समय से इस देश का नाम, आर्यावर्त्त के स्थान में हिन्दुस्थान पड़गया है। बस इस नाते से मैं भी आर्य तथा आप भी आर्य हैं। क्यों कि आर्य नाम श्रेष्ठ गुण युक्त मनुष्य का है। जैसा कि अमर कोश में लिखा है कि (महा कुल कुलीनार्यः सभ्य सज्जन साधवः) अर्थात् श्रेष्ठ कुलोत्पन्न सभ्यता युक्त सज्जन स्वभाव मनुष्य आर्य कहलाते हैं। अतएव हम आर्यसमाजी न होते हुए भी, उनकी मानने योग्य बातों को मानते हैं। और आपको भी माननी चाहियें। भला? जिस जाति ने अपने असली नामको भूलकर दूसरों का रक्खा नकली नाम स्वीकार करलिया होतो बताइये, उस जाति की नीति रीति एवं सभ्यता की रक्षा, कैसे और कब होसकती है।

वृद्ध—आपके इस कथन में क्या प्रमाण है कि इस देश का नाम आर्यावर्त्त तथा प्राचीन काल में इस देश के निवासी आर्य कहलाते थे ? ।

साधु—सुनिये एक नहीं, अनेक प्रमाण मौजूद हैं। जैसा कि मनु महाराज कहते हैं।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वाद् आसमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥

मनु० अ० २ । श्लो० २२

अर्थ—पूर्व समुद्र तथा पश्चिम समुद्र एवं हिमालय और विन्ध्याचल पर्वत के बीच की भूमि का नाम आर्यावर्त्त है, ऐसा विद्वान् लोग समझें ।

इस मनुस्मृति पर जो मान्यवर कुल्लूकभट्ट ने टीका किया है उसमें आर्य्यावर्त्त शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए आप ने लिखा है कि:—

आर्या अत्रावर्तन्ते पुनः पुनरुद्भवन्ती त्यार्य्यावर्त्तः ।

अर्थात् इस भू-भाग में आर्य लोग बार बार जन्म लेते हैं, इस लिये इस देश का नाम आर्यावर्त्त है। भागवत पुराण में एक जगह लिखा है:—

तेषां पुरस्ताद् भन्नार्यावर्त्ते नृपा नृप ! भा०६।६.५

हे राजन् ! उन में से कुछ पूर्व आर्यावर्त्त में राजा हो चुके हैं। बाल्मीकि रामायण में भगवान् राम के लिये अनेक स्थानों में आर्य शब्द आया है ।

आर्यः सर्व समश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ।बा०१।१६

अर्थात् महाराज राम आर्य थे इसी से वे समदर्शी तथा सब के लिए सदैव प्रिय दर्शन थे।

आर्यो ब्राह्मण कुमार्योः।

यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है। निरुक्त में आर्य को ईश्वर-पुत्र कहा है:—

आर्य ईश्वर पुत्रः। नि० ६। २६॥

कहां तक कहें, संस्कृत भाषा का कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिस में आर्य शब्द अनेक बार न आया हो। शाकुन्तल, उत्तर राम चरित, वेणीसंहार, नागानन्द, प्रबोधचन्द्रोदय आदि नाटकों में जगह जगह आर्य शब्द भरा पड़ा है। इन नाटकों के नियम को बांधने वाले साहित्य दर्पण, में लिखा है, कि ब्राह्मण को आर्य कह कर पुकारना चाहिये। नटी और सूत्रधार भी परस्पर आर्य शब्द का प्रयोग किया करें। मन्त्री को भी आर्य शब्द से संबोधित करना चाहिये। स्त्री अपने पति को सदैव आर्य या आर्य-पुत्र कह कर पुकारती रहे। स्मृति ग्रन्थों में तथा पुराणों में भी आर्य शब्द की खूब भर मार है। वेदों की तो बात ही दूसरी है। परन्तु इन ग्रन्थों में हिन्दू शब्द आज तक किसी को भी नहीं मिला। ऋ-गतौ धातु से ण्यत् प्रत्यय करने से आर्य शब्द की सिद्धि होती है। इस आर्य शब्द का अर्थ है—सर्वत्र गमन करने वाला, या सब को अपनाने वाला, अथवा पूर्ण ज्ञानी। आर्य राजाओं का सर्वत्र गमन, इतिहासों के अवलोकन से मालुम होता है। महाभारत में लिखा है कि—इक्ष्वाकु राजा से लेकर पण्डों तक इस देश के राजाओं ने सदैव चक्रवर्त्ती राज्य किया था। उन्हों ने सम्पूर्ण देशों को पराभूत कर के, उचित "कर" वसूल

किया था। अपनी पहिली यात्रा में, पाण्डवों ने, ब्रह्मा देश, चीन, श्याम, तिब्बत, मंगोलिया, तातार, ईरान आदि देशों को विजय किया। तथा दूसरी चढ़ाई में—लङ्का, अरब, मिश्र, जंजीबार, अफ्रीका आदि देशों में अपनी विजय पताका फहरायी। धनुर्धारी अर्जुन अमेरिका पहुंचे और वहां की राजकन्या 'उलूपी' से अपना विवाह किया। इतना ही नहीं किन्तु महाराज सगर ने जब दिग्विजय के लिये प्रस्थान किया तो भारतीय महासागर के सब द्वीपों पर विजय श्री प्राप्त की। महा प्रतापी रघु ने अनेक देशों में जाकर अपनी वीरता की धाक जमाई। इन आर्य्य राजाओं ने जिन २ देश तथा द्वीपों को विजय में प्राप्त किया, उन्हीं २ में अपने धर्म्म तथा सभ्यता का प्रचार भी किया था। इस बात के प्रमाण स्वरूप कई देशों में अब भी, प्राचीन आर्य धर्म्म के चिन्ह मौजूद हैं। इस समय में भी अमेरिका तथा अन्यान्य भारतीय द्वीपों में, वहां के मूल निवासी किसी न किसी रूप में राम और सीता का उत्सव मनाकर, आर्य धर्म्म के साथ, अपने विच्छिन्न सम्बन्ध का परिचय देते हैं। उस समयमें आर्य धर्म के प्रचारक तपोधन ऋषिमुनि, आज कल के पण्डितम्मन्यों की तरह कूप-मण्डूक नहीं थे। देखिये महाभारत के शान्ति पर्व में लिखा है कि एक समय, परम योगी व्यासदेव, अपने पुत्र तथा शिष्यों सहित पाताल देश (अमेरिका) में गये। वहां एक दिन अवसर पाकर उन के प्रिय पुत्र शुकदेव ने प्रश्न किया कि महाराज? आत्म विद्या इतनी ही है या इस से अधिक भी है। व्यास जी ने इस का कुछ प्रत्युत्तर न देकर कहा कि, इस बात को जनकपुरी के राजा, जनक जी आपको सुचारु रूप से समझायेंगे, आप वहां जाइये। यह सुनकर शुकाचार्य, हरिवर्ष (यूरोप) आदि देशों की यात्रा करते हुए

मिथलापुरी में आये। इतना ही नहीं, भविष्य पुराण में लिखा है कि सरस्वती की आज्ञा से 'कण्व ऋषि' मिश्रदेशमें गये और वहां के दशहज़ार म्लेच्छों को शुद्ध करके आर्य धर्म में प्रविष्ट किया। फिर उन सबको अपने साथ ब्रह्मावर्त्त में ले आये। पांच वर्ष के बाद उन्हें गुण कर्मानुसार चारों वर्णों में विभक्त करदिया। इन लोगों के साथ इनकी स्त्री भी आई थीं। इन दशहज़ार में से दो हज़ार तो वैश्य बन गये, बाक़ी ब्राह्मण क्षत्रिय तथा शूद्र वर्ण में चले गये। सम्भव है कि आज कल के मिश्र उपाधि-धारी ब्राह्मण उसी समय से कहलाने लगे हों। भविष्य पुराण में जो श्लोक लिखे हैं, सो सुनलीजिये।

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेश मुपाययौ।
म्लेच्छान् संस्कृत्य चा भाष्य तदा दश सहस्रकान् ॥१
वशी कृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्त्ते महोत्तमे।
ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम् ॥ २ ॥
पञ्च वर्षान्तरं देवी प्रादुर्भूता सरस्वती।
स पत्नीकांश्चतान् म्लेच्छान् शूद्रवर्णाय चाकरोत् ॥३॥
कार वृत्तिकराःसर्वे बभूवुर्बहु पुत्रकाः।
द्वि सहस्रा स्तदातेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ॥४॥
भ० पु० खं० ४। अ० २१

यदि देश देशान्तरों में गमनागमन न होता तो इस सर्व शिरोमणि आर्य धर्म का प्रचार कैसे हो सकता था।

वृद्ध—महात्मा जी! आज कल के पण्डित लोग तो कहते हैं कि समुद्र पार नहीं जाना चाहिये, ऐसा करने से भ्रष्ट हो

जाते हैं, और फिर बिना प्रायश्चित्त के छुटकारा नहीं होता। सो क्या यह ठीक है ?

साधु—यही तो इन पण्डित मानियों की भूल है, और जहां भूल है वहां सब क्रिया-कलाप प्रतिकूल है। जिन्हों ने प्राचीन इतिहासों का अवलोकन किया है, वे तो इन युक्ति शून्य विचारों के दास नहीं बनते। हां जो नेत्र-हीन तथा नाम के नयनसुख कहलाते हैं, वे इन विचारों को प्रमाण भूत मान कर कूप-मण्डूक बने रहते हैं।

देखिये, भगवान् कृष्ण तथा वीरवर अर्जुन, 'अश्वतरी' नाम की नौका में बैठ कर अमेरिका गये, और वहां से महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में 'उद्दालक' ऋषि को अपने साथ लाये। राजा धृतराष्ट्र कंधार देश में गये, और वहां की राजपुत्री से विवाह करके वापिस आये। राजा पाण्डु की धर्मपत्नी 'माद्री' ईरान देश के राजा की कन्या थी। मनुस्मृति में सागर पार जाने वाली नौका पर 'महसूल' लेना लिखा है। यह भी तो तभी सम्भव हो सकता है जब कि आर्य लोग सागर पार जाते हों। कहां तक कहें यह सब भूल की महिमा है। जब हिन्दुओं ने यह सोचा कि, अब हमारे अन्दर दूर देशों में जाने की योग्यता न रही, तो यात्रा के निषेध परक नियम मान लिये। यदि कोई योग्यता हासिल करके विदेश चला भी जाय तो, उस के लिये भ्रष्ट शब्द का प्रयोग करने लगे। ना जांय ना जानदें। कैसी बुद्धिमत्ता की बात है ?। हम ने तो इस भ्रष्ट शब्द का एक और ही अर्थ समझा है, सो इस प्रकार है—भ्रष्ट, नाम भुना हुआ, अर्थात् जो खूब पक गया हो। जैसे भुना हुआ चना फिर नहीं उगता। ठीक इसी प्रकार, जो लोग देश देशान्तर की रीति नीति को देख भाल कर भ्रष्ट हो जाते

हैं अर्थात् खूब पक जाते हैं तो, इन देश कालानभिज्ञ पल्लव ग्राहि पाण्डित्य वाले धर्म के ठेकेदारों के संकुचित विचारों के दास नहीं बनते। भला? जिन्हें भ्रष्ट ही होना है वे क्या, इसी देश में रहते हुए नहीं हो जाते हैं? और जो उत्तम प्रकृति वाले हैं, वे चाहे किसी भी देश में क्यों न जाते आते रहें उन्हें किसी प्रकार का अवगुण नहीं लग सकता। जैसा कि रहीम कवि ने कहा है:—

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का कर सके कुसंग।
चन्दन विष व्यापे नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥

स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द, विदेशों में कितने ही दिन रहे, खूब वेदान्त की धूम मचाई। वहां के बहुत से आबाल वृद्ध नर नारियों के गले में गीता की पुस्तक के तावीज बनाकर धारण करादिये, अनेक वेदान्त-भवन बनवादिये। बिल्कुल भी भ्रष्ट नहीं हुए। किन्तु दूनी योग्यता लेकर अपने देश को लौटे। और भी अनेक सुयोग्य पुरुष विदेशों में गये और खूब काम किया, अब निषेध परम्परा का समय नहीं है, देखते नहीं हो? चारों ओर से विदेशी आते हैं और भारत-वासियों को भेड़ बकरी समझकर, हमारी बेखबरी से नफ़ा उठाते हैं। यदि हम अपना, देश कालोचित कार्य क्रम न बनायेंगे तो अवश्य ही गैरों की ठोकरें खायेंगे। आज देश की जो अवस्था है वह मेरे और आप के सम्मुख ही है। हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध कवि शङ्कर ने कहा है:—

भूल रहे भूले फिरें, भूल भरे परिवार।
भूलों का करते नहीं, भूल विसार सुधार॥

परमात्मा करें भारत वासियों को अपने स्वरूप का पता लगे। इतना कह कर साधु ने थोड़ी सी देर के लिये मौन धारण कर लिया। वृद्ध के हृदय की उत्सुकता और भी सुनने के लिये विवश करने लगी। महात्मा के मुख की ओर बड़े ध्यान से देख रहा था, जैसे चन्द्र को चकोर देखा करता है।

तृतीय तरंग

तीर्थ तथा मठ मन्दिर सुधार

वृद्धः—महात्मा जी, आप चुप क्यों होगये, कुछ और सुनाइये, आपकी बातें बड़ी प्यारी एवं सच्ची मालूम होती हैं।

साधुः—बड़े जी, है तो कुछ अनुचित सा ही जो कि मैं आपको कुछ उदेश के रूप में कहूं, क्यों कि आप वयो वृद्ध हैं। तथापि आपकी प्रेरणा तथा आर्यजाति की अधोगति को निहारते हुए, विवश होकर कुछ कहना पड़ता है। पहिले आपने जो तीर्थ, तथा मठ मन्दिरों के विषय में बात कही था उसी पर थोड़ासा विचार करलीजिये।

देखिये, तीर्थ नाम पार उतारनेवाले साधन का है। यह तीर्थ शब्द 'अमर कोष' में अनेक अर्थों में आया है, जैसेः—

निपानागमयोस्तीर्थ मृषि जुष्टजले गुरौ।

अर्थात् गङ्गादि में स्नान करने के लिये, जिनसे उतरा जाय, उन पौड़ियों का नाम तीर्थ है। शास्त्र को भी तीर्थ कहते हैं क्यों कि इसके ज्ञान से अज्ञानान्धकार से पार उतर जाते हैं। महात्मा लोग जिन गङ्गादि नदियों के किनारे रहते हैं उनका नाम भी तीर्थ है क्यों कि गङ्गा स्नान से बाह्य मैल धोकर, उन महात्माओं के उपदेश से आत्म-विश्वासी बनकर संसार सागर से पार होजाते हैं। तथा गुरु को भी तीर्थ कहते हैं, क्यों कि उनकी शिक्षा से, काम क्रोध लोभ तथा मोह को लांघकर कुरीतियों से पार होजाते हैं।

मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि जिन को आज भी लोग तीर्थों के नाम से पुकारते हैं, कभी इनके किनारे बड़े २ तत्व-वेत्ता महात्मा लोग रहते थे। और सर्व साधारण जनता उनके उपदेश से लाभ उठाती थी। परन्तु वर्त्तमान तीर्थों की अवस्था पर जब गहरी दृष्टि से विचार करते हैं तो हृदय कांप उठता है, और मन भी शोक-सागर में डुबकी खाने लगता है। आज कल इन तीर्थ स्थानों में 'साधारण स्थानों की अपेक्षा कहीं अधिक पाप प्रवाह बहता है। शायद आप को मालूम न होगा, जिस काशी को विद्या वृद्धि में अन्य देश निवासी लोग भी भारत की नाक समझते थे, और बड़ी बड़ी दूर से श्रद्धा वृत्ति को धारण करके इसके दर्शनों को आया करते थे, आज उसी काशी, अर्थात् भगवान् विश्वनाथ को नगरी में दसहज़ार वेश्या, निश्शङ्कता पूर्वक पापाचरण कर रही हैं। इन में नब्बे फ़ीसदी हिन्दू वेश्या हैं। धर्म की लम्बी नाक वाले लोग अपनी नौजवान दुहिताओं को जबकि वे विधवा हो जाती हैं तो काशी-वास के लिये वहां छोड़ आते हैं। इन में अनेक ऐसी विधवा हैं जिन्हें खाने पाने को कुछ नहीं मिलता। हताश हो कर पापी पेट के लिये, गुप्त व्यभिचार करने लगती हैं, और अनेक बार भ्रूण हत्या करके गङ्गा मय्या की भेट चढ़ाती रहती हैं। मैं जब काशी में रहता था तो मेरे पास के मकान में एक वैद्य रहा करते थे. उन के पास जाकर अनेक ऐसे दृश्य देखने को मिल जाते थे। रोज़ एक दो स्त्री उन के पास इसी लिये आया करती थीं, और यही नहीं कि वे सब ही असहाय थीं, किन्तु उन के माता पिता और भ्राता आदि परिवार के लोग भी उन्हें व्यभिचार से गर्भवती देख कर अपनी इज्जत की रक्षा के लिये, वैद्य जी के पास ले जाते थे, और रुपयों की ढेरी कर देते थे। पुलिस के लोगों को गलियों में पड़े मांस के

झोथड़े मिलते रहते हैं। क्या यह तीर्थनिवास है ? या पापकर्म को छिपाने के लिये, दम्भ रूपी नाटक की जवनिका है।

काशी ही क्या ? मथुरा, प्रयाग, अयोध्या, गया, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार आदि प्रसिद्ध तीर्थों की भी यही अवस्था है। जहां पाप अधिक और पुण्य थोड़ा सा हो तो काम कैसे चले। बहुत से लोग कहा करते हैं कि वर्त्तमान तीर्थों में, पहिले जैसी शक्ति नहीं रही। रहे भी कहां से जबकि धर्म के ठेकेदारों ने ही तीर्थों की शक्ति को मिटाने के लिये कमर कस रक्खी है। क्या आप नहीं देखते, अभी भी अन्ध परम्परा के दास, धनी लोग, उन्हीं पण्डे पुजारियों को दान देते हैं जिन्हों ने दुराचार इति श्री को पहुंचा रक्खा है। इन आंख के अन्धे और गांठ के पूरे दान दाताओं को यह मालूम नहीं कि:—

कुपात्रेनियतं दानं प्रेत्यचेह विनश्यति।

अर्थात् बुरे मनुष्य को दिया हुआ दान, दान दाता को इस लोक तथा परलोक में हानि कर होता है। हिन्दू जाति में अब भी सब जातियों की अपेक्षा अधिक दान पुण्य होता है, यदि किसी बात की कमी है तो केवल पात्र कुपात्र देश-काल के विचार करने की है। भूल के कारण हिन्दू जाति ने अपनी दानप्रणाली को भी दूषित एवं निन्दनीय बना रक्खा है। कविवर बाबू मैथिलीशरण जी ने वर्त्तमान तीर्थों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए लिखा है कि:—

वे तीर्थ जो प्रभु की प्रभा से पूर्ण हो पूजित हुए।
राजर्षि युत् ब्रह्मर्षियों के कण्ठ से कूजित हुए॥
अब तीर्थ-गुरु ही हैं अधिक उनको कलंकित कर रहे।
हा! स्वर्ग के सोपान में हम नर्क अंकित कर रहे॥

इन तीर्थ स्थानों में जो अन्न क्षेत्र या भण्डारे खुले हुए हैं, उन में किसी भले मनुष्य को तो रोटी मिलनी भी मुश्किल है, हां अनेक मुस्टण्डे धूर्त्त दुराचारी रात दिन मौज उड़ाते हैं। भला, यह दान है या धन का दुरुपयोग है? इतना ही नहीं—

यही अवस्था हिन्दू जाति के बहुत से मठ मन्दिरों की है। जिन्हें पुजारियों ने अपनी बपौती समझकर बुरी भावनाओं को पूरी करने का साधन बनालिया है। इन तीर्थों तथा मठ मन्दिरों में लाखों रुपये सालकी आय होती है। यदि यह आमदनी किसी अच्छे काम में लगाई जाय तो कैसा अच्छा हो, कितना जाति तथा देश का भला होसकता है। इसी लिये बहुतसे देश-हितैषी नेता लोग, इन तीर्थ तथा मठ मन्दिरों के सुधार विषय में चिन्तित होरहे हैं।

जिन पुण्य भावों को लेकर हिन्दू जनता ने ये मठ मन्दिर बनाये थे, वे भाव तो अब न मालूम कहां विलोप होगये। हां बहुत से मठ मन्दिरों में, गंजेड़ी, भंगेड़ी, चरसी, पीनकी, शराबी, कबाबी, लुच्चे लुङ्गाड़ों के अखाड़े और अड्डे बन गये हैं। जहां कोई सभ्य-पुरुष जाता हुआ भी लज्जा करता है। इन कलयुगी वीरों की उक्तियों का अविकल अनुवाद, बाबू मैथिली शरण जी ने कैसा अच्छा किया है:—

हम मस्त हैं, हमपै चढ़ा कितने नशों का रंग है।
चण्डू चरस गांजा मदक, अहिफेन, मदिरा, भंग है॥
सुनलो जरा हम में यहां कैसी कहावत है चली।
पीता न गांजे की कली उस मर्द से औरत भली॥

जबकहीं इनकलयुगी योगों की मण्डली, एकत्रित होती है, और सुलफे की चिलम तैयार होजाती है, तब इनके मकूला-

चरणों की उक्तियें भी सुनने लायक होती हैं। कहते हैं:—(कैलाश के राजा? दम लगावे तो आजा॥ चिलम चमेली?, फूंकदे टेकेदार की हवेली॥ जो यारों को करे बुराई। उसको खाय कालिका माई) जब कभी 'पञ्चकनी' की चिलम पीने को मिलजाय तो स्वर्ग का दर्वाज़ा ही खुलजाता है! जिस समय भाँग का प्याला तैयार हुआ तो उसके ऊपर कपड़ा ढककर, कैसा बढ़िया आवाहन करते हैं। कभी सुना है या नहीं? यदि नहीं सुना तो हमसे सुनिये। (ढक परदा, रख लाज। मतकर किसी का मोहताज॥ मोहताज करे तो ऐसे का कर, जिसकी आंखों में लिहाज) (भाँग कहें सो बावरे, विजया कहें से कूर। याको नाम कमलापती रहें नयन भरपूर) और जब भांग की प्रशंसा करने का अवसर आता है तो इस प्रकार करते हैं:—

सवैया—

भींजत ही सब रीझत हैं, जब धोय धरी शिव के मन मानी।
मिर्च मसाला मिलाय दियो, फिर घोटकर वाको रस घानी॥
घोटम घोट पै घोट मची, अरु ब्रह्म-कमण्डलु के जल छानी।
गङ्ग से दूनी तरङ्ग उठ, जब अङ्ग में आवत भङ्ग भवानी॥

कायर क्या जानेंगे इस का स्वाद, इस को पीते हैं आज़ाद जब नशे में भरपूर हो जाते हैं तो फिर यार-बासी का—चुटकियों की ताल से जो गाना होता है, उसे मैं आप के सम्मुख सुना कर अपनी वाणी को तथा आप के कानों को गन्दा करना नहीं चाहता। यह सब अविद्या का साम्राज्य है लाखों घर इस सुलफ़े की चिलम तथा भांग के प्यालों से तबाह हो चुके हैं और होते जाते हैं। प्रति वर्ष नब्बे करोड़ रुपया नशीली चीज़ों के बदले हिन्दुस्तान से विदेशों में चला

करता है, परन्तु हिन्दू इस कुप्रथा को नहीं त्याग सकते। त्याग दें तो शिवजी के गण कैसे बनें। हिन्दू जनता का अधिक समुदाय आज इन नशीली चीज़ों की बदौलत अनेक व्याधियों का केन्द्र बन गया है।

हां पहिले इन तीर्थों तथा मठ मन्दिरों से जनता को बड़ा लाभ पहुंचता था, जैसा कि इस सवैया छन्द में बताया गया है:—

तीर्थ बने जग में अघ-नाशक, पुण्य प्रकाशक सङ्कट हारी।
सन्त समूह रहे जिन के तट, दम्भ निवारक बोध बिहारी॥
ब्रह्म-विवेक दिनेश उदे, जिस के उर में जग-मङ्गलकारी।
पुण्य प्रथा जब थी तब थी, अब तो जड़ केवल पेटपुजारी॥

आज फिर भी यदि ये धर्म स्थान पूर्ववत् बन जांय तो हिन्दू जाति का सर्व सुधार हो जाय। कहिये यदि इन तीर्थ तथा मठ मन्दिरों में होने वाली कुरीतियों का उस आर्य समाजी पण्डित ने खण्डन किया तो क्या बुरा किया? ऐसी बातों का तो सभी को खण्डन करना चाहिये। जिन्हें इन स्थानों में कुछ दिन रहने का अवसर मिला है, वे इन की दुर्दशा का चित्रावलोकन भली प्रकार कर सकते हैं। कहां तक कहें अन्त में परमात्मा से हमारी हार्दिक प्रार्थना है:—

तीर्थ शक्ति शाली बनें, मठ मन्दिर अनुकूल।
भारत वासी सजग बन, भूल जांय सब भूल॥

——:०:——

चतुर्थ तरंग

॥ हिन्दू संगठन ॥

वृद्धः—महात्मा जी, बात तो ऐसी ही थी ! उस आर्य-समाजी पण्डित ने भी यही बताया था, जो आपने कहा है, परन्तु मेरे सुनने में और समझने में अन्तर था। अब ठीक समझा गया।

कृपया यह तो बताइये, कि उस पण्डित ने अपने व्याख्यान में हिन्दू-संगठन, शब्द का अनेक बार प्रयोग किया था, सो इस का असली तात्पर्य क्या है ?।

साधुः—बहुत अच्छा सुनिये ! संगठन शब्द का अर्थ मिलकर रहना है। इसलिये हिन्दू-संगठन का अर्थ सब हिन्दू भाइयों का मेल है। इसका तात्पर्य, एक मन होकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति को एक-ओर लगाने में है। हिन्दू-जाति में जो भूल के कारण अनेक नीच, ऊंचता के कुत्सित भेद भाव भर गये हैं, वे सब इसी संगठन से दूर होसकते हैं। और यह आर्य जाति पूर्ववत सुख-शिखरासीन होसकती है। फल इस का यह होगा कि जो हिन्दू जाति के जन्म सिद्ध अधिकार विदेशी वणिकों के हाथ छिन चुके हैं, और पद पद पर इसे, अपनी रक्षा के लिये दूसरों का मुख तकना पड़ता है, सो न पड़ेगा। यह बात बिना संगठन के कदापि नहीं होसकती। एक नीतिकार का वचन है किः—

(संघे शक्तिः कलौ युगे)

अर्थात् कलि काल में मिलकर काम करने से ही कामयाबी होसकती है। यह बात लिखी तो आर्य, जाति के ग्रन्थों में है, परन्तु इसके असली तात्पर्य को समझकर काम दूसरी जातियों के लोग कर रहे हैं, और हिन्दू जाति बेसुध होकर सो रही है। इसी का नाम तो भूल है। देखिये? ईसाई लोग रविवार के दिन अपने गिरजाघरों में एकत्रित होकर प्रभु-प्रार्थना करते हैं और फिर योग्य पादरियों का सरमन (उपदेश) बड़े ध्यान से सुनते हैं। उस पादरी के मुख से अपनी उन्नति के समाचार सुनकर, आगे के लिये कार्य क्रम बनाते हैं, एवं तन, मन, धन, से उस कार्य क्रम को पूरा करने के लिये कटि-बद्ध रहते हैं। यह लोग सातवें दिन विचार पूर्वक अपनी कमजोरियों को दूर करके, नये सिरे से, नये उत्साह से, और नये भावों से भरकर यह निश्चय करलेते हैं कि:-

कार्य्यं वा साधयामः शरीरं वा पातयामः।

अर्थात् यातो हम लोग अपने काम को सिद्ध करलेंगे, नहीं तो प्राण समर्पण करदेंगे। इस विश्वास का परिणाम स्वरूप, आज आधा संसार ईसाई-धर्मावलम्बी होचुका है, यदि आपको विश्वास न हो तो भारतवर्ष के आसाम प्रान्त के इतिहास पर ध्यान दीजिये। सन् १९२१ ई० की मनुष्य गणना के अनुसार आसाम प्रान्त की जन-संख्या छिहत्तर लाख, छासठ हज़ार, तीस के लग भग है। इस प्रान्त में ईसाई प्रचारकों के ४३ केन्द्र हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष में १६७ मिशनरी सोसायटी काम कर रही हैं। जिनके प्रचारकों की संख्या ७ हज़ार २ सो १८ है। इन उपरोक्त प्रचारकों की संख्या में से केवल आसाम प्रान्त में ३ हज़ार ४ सो ६१ स्त्री और पुरुष पादरी काम करते हैं। ईसाइयों को इस प्रान्त में

खूब सफलता मिली है। ईसाइयों ने इस प्रान्त में ६ बड़े अस्पताल डिस्पेंसरी, २ यन्त्रालय, २ कोढ़ी अस्पताल, १ कृषि विद्यालय, २ बोर्डिङ्ग हाऊस आदि अनेक संस्थायें खोल रक्खी हैं। १२ अनाथालय भी क़ायम किये हैं। यहां पर अनेक अविवाहित योरोपियन महिलायें अदम्य उत्साह से काम करती रहती हैं। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जिन स्थानों में १० वर्ष पूर्व एक भी ईसाई देखने को नहीं मिलता था, आज उन्हीं स्थानों में ७५ प्रतिशत् मनुष्यों ने ईसाई धर्म्म को ग्रहण करलिया है। और तीन तीन फुट लम्बी शिखाओं को अपने शिर पर धारण करनेवाले हिन्दुओं ने आज अपने उत्तमाङ्ग शिखा कटाकर। "सफाचट मैदान" करालिये हैं। जिस ग्राम में जिस दिन सब स्त्री पुरुष अपने आपको ईसाई मान लेते हैं, उसी दिन से उस ग्राम का नाम भी ईसाई नाम को स्वीकार करलेता है। जैसे कृष्ण-नगर का क्रिश्चियन-नगर नाम पड़जाता है। आसाम प्रान्त के चाय बगानों में १६ लाख मज़दूर काम करते हैं। इन में प्रचार के लिये ईसायों ने "सालवेशन आरमी" अथवा "मुक्ति फौज" नाम की संस्था खोल रक्खी है। ये प्रचारक लोग विदेशों से लाखों रुपये लाकर यहां के दीन हीनों को सहायता देते हैं फिर इनका धर्म्म प्रसाद को प्राप्त क्यों न हो, जिन गिरि-गहरों में ऋषि जन, पवित्र ओंकार की अविरामध्वनि लगाया करते थे, आज उन्हीं में बपतिस्मा के पाठ पढ़ाये जाते हैं। जिन गुफाओं में होकर गङ्गा यमुना की धारा बहती थी, आज उसी धारा के साथ ही गौ के रक्त की धारा भी बहती दिखाई देती है क्या इस भयानक पतन का भी कुछ प्रतिकार है? । यह सब हिन्दू जाति में संघ शक्ति के अभाव से ही हो

रहा है। इन ईसाइयों के अलावा अब आप मुसलमानों की ओर दृष्टि पात कीजिये।

ये लोग भी अपनी जाति में से नीच ऊंचता के भेद भावों को भूल कर तथा एक मन हो कर शुक्रवार के दिन मसजिद में एक साथ नमाज़ पढ़ते हैं, और मनुष्यों की समानता के सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप मे दिखलाते रहते हैं, फिर मुल्ला का (वाज़) अर्थात् उपदेश बड़े ग़ोर से सुनते हैं। वह मुल्ला अपने उपदेश में मुसलमानों को जोश दिलाता है, काफ़िरों के ख़िलाफ़ भड़काता है अपने मज़हब को फैलाने के लिये उत्साहित करता है, और जो कुछ गुप्त मन्त्रणा करनी होती है, उसे भी उन के सम्मुख उपस्थित कर देता है। ऐसा करने का फल यह होता है कि उस नगर के मुसलमानों तथा उनके बच्चों तक के हृदय में एक प्रकार के भावों का संचार होने लगता है और जिस काम को करना चाहते हैं बड़ी आसानी से कर लेते हैं। क्या आपने कभी हिन्दू जाति के मठ मन्दिरों में भी ऐसा होता देखा? इस जाति के मठ मन्दिरों में तो वे ही बातें होती हैं जो मैं आप को प्रथम सुना चुका हूं। यदि ईसाई और मुसलमानों की तरह हिन्दू लोग भी अपने देव मन्दिरों में सातवें दिन मिल कर ईश्वर प्रार्थना करने के बाद अपनी जाति की उन्नति एवं कल्याण का मार्ग सोचा करें तो कैसा अच्छा हो। दीर्घदर्शी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने हिन्दू जाति की इस कमी का अनुभव किया था, उन के आदेशानुसार आर्य्य समाजिक लोग रविवार के दिन अपने २ नगर के समाज मन्दिरों में मिल कर ईश्वर प्रार्थना तथा अग्निहोत्र आदि क्रिया करने के अनन्तर अपनी नीति और सिद्धान्तों पर किसी न किसी रूप में विचार अवश्य करते

हैं, एवं जाति पांति के व्यर्थ ऊंच नीचपन को भूल कर अपने उद्देश्य की पूर्ति में लगे रहते हैं। ऐसा करने का फल यह है कि आज मुट्ठी भर आर्य्य-सामाजिकों ने कितने ही स्कूल, कालेज, गुरुकुल, अनाथालय, कन्या पाठशाला, गोशाला, छात्रावास, विधवा आश्रम, रात्रिपाठशाला, धर्मार्थऔषधालय, उपदेशक मण्डल, ब्राह्मविद्यालय आदि संस्थाएं खोल रक्खी हैं, हिन्दू लोग विपुल संख्या में होते हुए भी कार्य्य क्रम में उन की समता नहीं रखते, इस का कारण संघ शक्ति का अभाव ही तो है। इस हिन्दू जाति को जगाने के लिये आज तक अनेक आर्य वीर बलिवेदी पर चढ़ चुके हैं। क्या इस में भी पक्षपात की कोई बात है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आज सम्पूर्ण हिन्दू जनता को एक मन हो कर अपनी जाति की कमज़ोरियों को विचारते हुए उन्हें दूर करने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। नहीं तो एक ऐसा समय कुछ ही काल के बाद आने वाला है जब कि इस जगत् विख्यात आर्य जाति का नाम लेवा भी कोई नहीं रहेगा। इस जाति के धर्म और धाम की रक्षा संघटन शक्ति से ही हो सकती है अन्यथा नहीं। जब से हिन्दू जाति ने वैदिक शिक्षा के महत्व पर विचार करना छोड़ा है तभी से इस को संकट समुदाय ने आकर घेर लिया है। वेद में अनेक ऐसे मन्त्र आये हैं जिनमें संघटित रूप से रहने की आज्ञा है, एक मन्त्र में कैसा अच्छा कहा है:-

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ ऋ०

हे मनुष्यो तुम मिल कर चलो, मिलकर बोलो, और मिल कर ही एक दूसरे के सुख दुख के साथी बनो।

जब से हम ने वेद भगवान् की परिणाम रमणीय आज्ञाको भुलाया है तभी से यह दशा प्राप्त हुई है। जो मेरे और आप के सम्मुख है। आज हिन्दू जाति की विचार शक्ति को भयानक भूल का संक्रामक रोग लग रहा है, इस का यदि कोई अचूक औषधि है तो केवल संघ-शक्ति ही है। बस, इसी भाव को लेते हुए उस पण्डित ने हिन्दू-सङ्गठन का नाम लिया होगा जो समुचित ही था। इस हिन्दू-सङ्गठन की आवश्यकता गुण्डे तैयार करने के लिये नहीं है। किन्तु सच्चे और पक्के आर्य्य बनाने के लिये हैं। जिस का अर्थ एक सज्जन समुदाय ही हो सकता है। सम्पूर्ण देश में ऐसे नवयुवकों की परमावश्यकता है, जो मानवीय भ्रातृभाव के आदर्श मेल से युक्त नम्रतापूर्वक, अपनी जाति की सेवा कर सकें, यदि हमारी जाति के किसी व्यक्ति पर कोई आततायी अत्याचार करता है तो हमारे अन्दर उस आततायी के मुक़ाबला करने की शक्ति होनी चाहिये, और यह शक्ति बिना सङ्गठन के नहीं आसकती।

संघ शक्ति शुभ तरणि सुहाई।
तरहु बैठि सब मिल जुल भाई॥
खल दल दलन होय दुख छीजे।
ऐसे सुखद नियम कर लीजे॥

पंचम तरंग

छूआछूत का रोग

वृद्धः—महात्मा जी! यह तो सब ठीक है, परन्तु उस आर्य-सामाजिक पंडित ने तो अपने व्याख्यान में यों कहा था कि छूआ छूत के भूत को हिन्दू जाति से एक दम पृथक कर-देना चाहिये। किसी के छूने से कोई भ्रष्ट नहीं होता सबको समानाधिकार मिलना चाहिये सब ही परमपिता परमात्मा के प्रिय पुत्र हैं। जब ऐसे भाव आजायेंगे तभी देश तथा जाति का भला होगा। क्या, ऐसा भी कभी होसकता है!

साधुः—बड़े जी, हिन्दू जाति की कमज़ोरी का मूल कारण तो यही है। जब तक इसका निवारण नहीं होता, तब तक उन्नति केवल शश-शृङ्ग के तुल्य है। हमारी यह मोहमयी प्रमाद निद्रा इतनी प्रबल होचुकी है, कि अनेक प्रकार के अपमान और अत्याचारों को सहते हुए भी भङ्ग नहीं होती। एक महात्मा का वचन है कि:—

विजानंतो प्येतान् वयमिह विपज्जाल जटिलान्।
नमुञ्चामो मोहान् अहहगहनो भ्रान्ति महिमा॥

अर्थात् हम लोग यह जान भी रहे हैं, कि हमको चारों ओर से विपत्ति के जटिल जाल ने जकड़ रक्खा है। फिर भी अज्ञान रूपी शत्रु से अपना पीछा नहीं छुड़ाते। इस से बढ़-कर भूल की महिमा और क्या होसकती है। केवल अपने आपको पवित्रम्मन्यता का यह परिणाम हुआ, कि हमने अपने सात करोड़ छोटे भाइयों को अछूत कह २ कर अन्य

धर्म्मावलम्बियों के लिये नित्य प्रति का शिकार बना दिया। मद्रास प्रान्त में तो इस छूआछूत के भूत ने बड़ा भयानक रोब जमा रक्खा है, जब कोई ब्राह्मण जाति का मनुष्य, किसी मार्ग से गुज़रता है तो अपने कानों को दोनों हाथों से दबाकर और हा-हा हू-हू शब्द करता हुआ दौड़ लगाता है भय यह है कि उसके पवित्र कानों में किसी अछूत का शब्द न पड़जाय, क्या इस पाखण्डका भी कोई प्रतिकार है? संस्कृत के कई एक ग्रन्थों में तो यहां तक लिखा है, कि शूद्र यदि वेद को सुनले तो उसके कानों में गरम सीसा और लाख भरना चाहिये, शूद्र के समीप बैठकर वेद मन्त्रों का उच्चारण नहीं करना चाहिये क्योंकि शूद्र इस शान के तुल्य है :—

न शूद्राय मतिं दद्यात्।

अर्थात् शूद्र को उपदेश भी नहीं करना चाहिये। कितना भयानक भेद है कहां तो वेदान्त की अभेद बुद्धि, 'सर्व संग्राहिणी बुद्धि, सर्वं खल्विदंब्रह्म वाली बुद्धि और कहां यह कथन, आकाश पाताल का अन्तर है या नहीं। न मालूम ऐसे उदार चेता आचार्यों की लेखनी इतनी निष्ठुर क्यों बन गई परिणाम इसका यह हुआ कि प्रात: स्मरणीय शङ्कराचार्य्य जी की जन्मभूमि मालावार में पिछले दिनों केवल सत्रह लाख मोपलाओं से पचासलाख हिन्दू बेतरह पीटे गए, और उनकी बहू बेटियों की दुर्दशा आततायी मोपलाओं ने जो की थी उसे मैं आपके सामने इस भागीरथी के पवित्र तट पर बैठकर कहना नहीं चाहता कहां तो भारत वर्ष का वह उदार युग जब कि ब्राह्मण तथा चाण्डाल में सम बुद्धि रखनेवाले व्यक्ति ही सच्चे पंडित कहलाते थे जैसा कि गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है।

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनिः॥

गीता अ० ५। १८

हे अर्जुन! विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण में, गौ में, हाथी में तथा कुत्ते और चाण्डाल में समान दृष्टि वाले जन ही पण्डित होते हैं। परन्तु वर्तमान समय की गति तो देखिये कि परम पिता परमात्मा की कृपा का ठेका अपने को ऊंच मानने वालों ने ही ले रक्खा है और बड़े अभिमान से कहते हैं कि मुक्ति का अधिकार सिवाय हमारे और किसी को नहीं है। न मालूम ये लोग ऐसा कहते समय भगवान् कृष्ण की उक्ति को क्यों भूल जाते हैं—गीता में लिखा है:—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्या स्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम्॥

गीता अ० ६। ३२

हे पार्थ मेरा आश्रय लेने से स्त्री, वैश्य और शूद्र आदि जितनी भी नीची श्रेणी की योनि हैं वे सब परम गति को प्राप्त हो जाती हैं। अब कहिये भगवान् कृष्ण का वचन सत्य माना जाय या इन व्यर्थ अभिमानियों का? विश्वास रखिये जिन अपने सात करोड़ छोटे भाइयों को हम कुत्ते से भी बदतर समझते हैं उन्हें दूसरे धर्म वाले प्रेम से अपनाने के लिये भुजा पसारे बुला रहे हैं और अपने समानाधिकार देने को तैयार रहते हैं। जब कि हम अपने दलित भाइयों के साथ इतना अन्याय कर रहे हैं तो हमारे साथ दूसरे लोग अन्याय क्यों नहीं करें उन का ऐसा करना यथार्थ ही मालूम होता है क्यों कि एक उर्दू भाषा के कवि ने कहा है:—

सताना बेगुनाहों का नहीं बरबाद जाता है।
सताता जो किसी को है सताया आप जाताहै ॥१
ग़मज़दों का आहो नाला रायगां होता नहीं।
या ज़मीं होती नहीं या आसमां होता नहीं ॥२

यही कारण है कि जब गोरों और कालों के अधिकारों के विषय में राजकीय सभा में विचार होता है, तो ऐसी ही अड़चनें, विघ्न बाधा रूप से उपस्थित हो जाती हैं। छूआछूत के भूत ने हमारे विश्व विख्यात सर्व समर्थ आर्य्य धर्म को इतना संकुचित तथा कमज़ोर कर दिया है कि जहां किसी छोटे भाई का अङ्ग-स्पर्श हुआ तो बस हमारा धर्म हवा हो जाता है, यह धर्म है या छुई मुई का पेड़ा है? जिस धर्म का नाम मानव नहीं, वैदिक नहीं, आर्य्य नहीं, सनातन नहीं, देव नहीं, गंधर्व नहीं, ऋषि नहीं, मुनि नहीं, 'हिन्दू' पड़ गया है जो किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में लिखा हुआ नहीं मिलता, एवं जिस धर्म की यह प्रथा है कि नौ कनौजिये तेरह चूल्हे, सात गुजराती और नौ चूल्हे। यदि आप को विश्वास न हो तो जब कभी अवसर मिले तो काशी की पाठशालाओं में देख लेना। अब आप ही बताइये कि ऐसे नाजुक धर्म के मानने वाले कब और कैसे अपनी उन्नति कर सकते हैं? एक मुसल-मान दोस्त ने एक हिन्दू से कहा कि जनाब, माफ़ कीजियेगा आप का धर्म तो चूल्हे में गया। परन्तु हमें तो मालूम होता है कि हिन्दू धर्म चूल्हे में भी नहीं है। यदि चूल्हे की पवित्रता का ही ठीक ध्यान रखते तो भी तो ठीक था क्यों कि चूल्हे की पवित्रता निरामिष भोजन पकाने में है परन्तु यहां तो बहुत से ब्राह्मण क्षत्रिय और शूद्रों का भोजन ही बिना मांस

के नहीं बनता। वे लोग भेड़, बकरी, भैंसा, मछली कई प्रकार के पक्षी और सूअर हिरन आदि जानवरों को हसते २ चट कर जाते हैं, क्या इसी का नाम अहिंसा धर्म है महात्मा कबीर ने कहा है कि:—'चौके भीतर मुर्दा पाके, न्हाय धोय कर जीमें' इस लिए ऐसे लोगों का चूल्हा भी पवित्र न रह सका, वाम मार्ग और पंच मकार के लोग आप को इसी विशाल हिन्दू धर्म में मिल सकते हैं अन्यत्र नहीं। प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार की व्यर्थ छूआ छूत का कहीं भी उल्लेख नहीं है, यदि कहीं है भी तो व्यक्ति विशेष के लिये है किसी जाति विशेष के लिये नहीं। जिस चीज़ के छूने से हानि होने की सम्भावना हो वही अछूत कहलाती है, जैसे सर्प बीछू आदि। भला मनुष्य के छूने से भी कभी हानि होती है? जब से ऐसे भाव भारत निवासियों के हुए तभी से संकोच होता गया, और अपने धर्म के सर्व सामर्थ्य को भूलते चले गये। ऋषियों ने धर्म शास्त्रों में अनेक जगहों में छूआ छूत का एक दम निषेध किया है जैसा कि इस श्लोक में वर्णन है:—

विवाहोत्सव यज्ञेषु संग्रामे जल विप्लवे।
पलायने तथारण्ये स्पर्श दोषो न विद्यते॥

अर्थात् विवाह में, उत्सव में, यज्ञों में, युद्ध में, पानी की बाढ़ में, दौड़ने में तथा जङ्गल में स्पर्श दोष नहीं लगता। इस प्रकार के भाव जब तक हमारे देश में रहे तब तक कल्याण का द्वार खुला रहा जब तामसी बुद्धि ने प्रसार पाया तो सब का सब ढांचा ढीला हो गया। भगवान् कृष्ण ने गीता में बतलाया है कि:—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसा वृता

सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिःसा पार्थतामसी ॥

गीता अ० १८ । ३२

हे पार्थ जो बुद्धि अज्ञान से घिरकर अधर्म को तथा सब अर्थों का विपरीत हो जानती है वह तमसी कहलाती है यही कारण है कि आज भारतवर्ष में सब काम विपरीत होते जाते हैं परस्पर सहानुभूति का चिन्ह भी दिखलाई नहीं देता । हां, वाह्य आडम्बर तो इतना बढ़गया है कि जहां हमारे ऊपर किसी छोटे भाई की छाया भी पड़गई तो हमें प्रायश्चित्त करने की नौबत आजाती है इसी का नाम तो दम्भ है अहा ? दम्भ का नाम लेने से मुझे दो श्लोक याद आगये जो संस्कृत के एक प्राचीन ग्रन्थ (प्रबोध चंद्रोदय) नाम के नाटक में लिखे हैं । इस ग्रन्थ को एक अनुभवी और सहृदय, तपस्वी ब्राह्मण 'कृष्ण मिश्र' ने बनाया है । दम्भ अहंकार से कहता है:-

सदनमुपगतोऽहं पूर्वमम्भोज योनेः,
सपदि मुनिभिरुच्चै रासनेषू ज्झितेषु ।
सशपथमनुनीय ब्रह्मणा गोमयाम्भः,
परिमृजितनिजोरा वाग्रहेणा सितोस्मि ॥

दम्भ बोला कि मैं एक समय ब्रह्मा जी से मिलने के लिये उन के मकान पर गया बस, फिर क्या था मुझे दूर से ही आता देख कर सब ऋषि मुनियों ने एक दम अपने अपने आसनों को छोड़ दिया, और ब्रह्मा जी ने मुझे बैठाने के लिये अनेक क़स्में दिलाई । जब मैं नहीं बैठा तो गऊ का गोबर मंगा कर और उस गोबर से अपनी जांघ को मल कर खूब साफ़ कर चुकने के बाद अनेक प्रार्थना करके मुझे अपनी जांघ पर बिठलाया । यह सुन कर अहङ्कार बोला:—

नास्माकं जननी तथोज्ज्वल कुला सच्छ्रोत्रियाणां पुनर्व्यूढा काचन कन्यका खलुमया तेनाऽस्मिता ताधिकः अस्मच्छ्यालक भागिनेय दुहिता मिथ्याभिशप्तायत स्तत्सम्पर्क वशान्मया स्वगृहिणी प्रेयस्यपिप्रोज्झिता॥

भाई दम्भ तू अपनी इतनी प्रशंसा क्यों करता है। मेरी कथा तो सुन। मेरी माता किसी अच्छे ख़ानदान की नहीं थी बस इस दोष को दूर करने के लिये मैंने बड़ी छानबीन के बाद एक श्रेष्ठ श्रोत्रिय कुल की कन्या से अपना विवाह किया था इस बात में मैं अपने पिता से भी एक दर्जे बढ़ चुका हूं एक दिन मेरे साले के भानजे की लड़की पर किसी ने मिथ्या दोषारोपण कर दिया था और उस लड़की ने आकर मेरी स्त्री को छू दिया था। बस इतने अपराध से ही, मैं ने अपनी प्राण प्यारी नारी को सर्वदा के लिये त्याग दिया। बतला मैं बड़ा या तू? (साधु के मुख से इन दोनों श्लोकों का अर्थ सुनकर बृद्ध बड़ा खुश हुआ और उस की यह खुशी हृदय में न समा सकी झट खिलखिला कर हंस पड़ा। साधु ने कहा बड़े जी! हंसते क्या हो यह तो रोने की बात है। इस प्रकार के दम्भ और अहङ्कार ने इस जाति को तबाह कर दिया है। जिस धर्म में एक जाति की चार जाति और चार जाति की चार हज़ार जाति हो गई हों, जो एक दूसरी को छूने में भी संकोच करती हो, एवं जिस धर्म के चार वेदों के चार हज़ार सम्प्रदाय बन गये हों, जो एक दूसरे को निन्द्य मानते हैं, और जिस धर्म के उपदेशकों में संन्यासी, उदासी, वैरागी, निरञ्जनी, निर्वाणी, निर्मले, जूना, कनफटा, कबीर पंथी, गोरख पंथी, धीसा पंथी, कूड़ा पंथी, दादू पंथी, साधना पंथी, रामा नन्दी,

रामानु जी, शंकरी, वल्लभी, मध्वसम्प्रदायी, निम्बार्की, चैतन्य पंथी, शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, स्मार्त्त, गोस्वामी, राधा स्वामी, विश्नोई, सुथरेशाही, वेनामी, निराकारी, चरणदासी, खाखी, मूलकदासी, रैदासी, सैनाई, मीराबाई, सखीभाव, हरिश्चन्द्री, जोगी, जङ्गम, ऊर्ध्वबाहु, आकाश मुखी, नखी, गूदड़, रूखड़, सूखड़, कड़ालिङ्गी, कानचेली, कारवेली, बाम-मर्गी, करारी, अघकारी, सोगी, बाबालाली, प्राणनाथी, देव-दासी, संत नमी, रविनारायणी, शून्यवादी, जैनी, दिगम्बरी, श्वेताम्बरी, पीताम्बरी, ढूंढिये, बिहारी आदि फिरके बनयए हों, जो एक दूसरे को येन केन प्रकारेण नीचा दिखाने को कमर कसे तैयार रहते हों तो बताओ इस जाति की अधोगति क्यों न हो। उसे कौन रोक सकता है, ऐसी हालत देखकर ही तो कहना पड़ता है।

कवित्त

भारत में भूल की भरी है भरमार जैसी,
ऐसा किसी देश में भी नामको न पाती है।
दुष्ट दुराचारियों की दुष्टता का अंत नहीं,
दासता की बेड़ी में स्वतंत्रता सजाती है।
ज्ञान हीन गुरु बने गौरव गंवाय दियो,
भेद भावना से भरपूर हिन्दू जाति है।

कहां लो बतावें छूआछूत के ढकोसले से भिन्न देशवालों से अछूत ही कहाती है। 'इतना कहकर, महात्मा जी अपने मन ही मन में कुछ विचारने लगे।

षष्ठः तरंग

अछूतोद्धार

वृद्धः—महात्मा जी जो बातें आपने बतलाई हैं वे सब ठीक ही हैं आपके समझाने की रीति ही विचित्र है मेरी क़रीब सत्तर साल की उम्र होचुकी है। मैंने अपने सिर के बाल धूप में पका के तो सफेद किये ही नहीं हैं। मैं भी तो कुछ देश काल को समझता हूं। मेरा विश्वास होगया है कि जो आप कहते हैं, सब सच कहते हैं। इसमें भी यदि कोई बिना समझे हठ करै तो उसकी यह भारी भूल है। अभी दो तीन बातों में मुझे सन्देह है, कृपया उन्हें और समझा दीजिये फिर ऐसा अवसर कहां मिलेगा, आप जैसे महात्मा रोज़ रोज़ नहीं मिलाकरते। उस पण्डित ने कहा था कि-अपने छोटे भाइयों को भी बड़ा बनने के लिये अवसर दो। इन्हें अछूत कहना भारी पाप है। इस पाप का प्रायश्चित्त यही है कि इन लोगों के बालकों को अपने बालकों के साथ पढ़ाना लिखाना चाहिये और इन लोगों को अपने कूओं पर बिना रोक टोक पानी भरने देना चाहिये, एवं देव मन्दिरों में इन्हें देवताओं के दर्शनों से वञ्चित नहीं रखना चाहिये अर्थात् इन लोगों के अधिकार भी अपने बराबर ही समझने चाहियें। सो क्या यह बात ठीक है। इसमें तो मुझे गड़ बड़ मालूम होती है।

साधुः—क्या गड़बड़ मालूम होती है?

वृद्ध—यदि ये लोग अपना काम काज छोड़ देंगे और सब पढ़ने लिखने लग जायेंगे तो हम लोगों को बड़ी दिक़्क़तें उठानी पड़ेंगी।

साधुः—प्रथम तो आपका यह विचार ही स्वार्थ से परिपूर्ण है। क्या परमात्मा ने इन लोगों को इसी लिये बनाया है कि अपने आपको उच्च कहने वालों की हमेशा ठोकरें खाते रहें और चूं तक भी न करें, क्या इसी का नाम इन्साफ़ है मैं आपसे पूछता हूं, कि हिन्दू जाति के बहुत से अन्य लोगों ने अपने पेशे छोड़कर दूसरे काम स्वीकार करलिये, तो क्या दिक्क़तें हुईं दूसरी बात यह है कि अपना २ पेशा अर्थात् काम करने से कोई नीच या ऊंच नहीं होता। नीच ऊंच होना तो शुभा शुभ कर्म करने पर अवलम्बित है। ठीक कहा है:—

यात्यधोऽधो व्रजत्युच्चैर्नरः स्वैरेव कर्मभिः।
कूपस्य खनितायद्वत् प्राकारस्य चकारकः॥

अर्थात् मनुष्य अपने ही शुभाशुभ कर्मों से ऊपर नीचे चला जाता है: जैसे कूआं खोदने वाला नीचे जाता है, तथा कोट बनाने वाला ऊपर चढ़ जाता है। यदि इनको अपने पेशे करने में ही लाभ मलूम होगा तो कदापि उन्हें न छोड़ेंगे, किन्तु और सुचारु रूप से करेंगे? देखिये, बहुत से ब्राह्मण और वैश्य चमड़े की दूकान करते हैं, उन्हें किसने जाति से पृथक् किया। बड़े दुःख की बात है कि एक ऐसा मनुष्य जो हिन्दुओं को काफ़िर कहै, और हिन्दू समाज की परम पूज्य गौ को मार २ कर अपने पेटको कबरिस्तान बनाता रहै, शौच क्रिया को कुछ भी न समझे, हर समय हिन्दू समाज को नीचा दिखाने के लिये कटिबद्ध रहै प्रत्येक काम हिन्दुओं से विपरीत करै, मिट्टी के बरतन से आबदस्त लेकर उसी बर्तन से कूए का पानी निकाले, तब तो हिन्दू पंचों के कान पर जूं तक न रेंगे। और यदि कोई हमारा ही चर्मकार भाई जो सिर पर एक फुट लम्बी चुटिया रक्खे, गोवंश की रक्षा का

पक्षपाती हो, राम नाम का जप करते हुए जिसकी जिह्वा भी न थकती हो, गाय को देखकर श्रद्धा युक्त होजाए, हर एक काम हिन्दू धर्म के अनुसार करे फिर भी वह माँज धोकर पीतल या लोहे का बर्तन कुएं में डालदे तो हिन्दू धर्म काफ़ूर होजाए कितनी बेइन्साफ़ी है! कितना घोर अन्याय है। कितनी विपरीत भावना है, और कैसी विशाल भूल है। हमने बहुत से ग्रामों में देखा है, जहां इन भाइयों का निजी कूआ नहीं होता वहां एक २ मील की दूरी से पानी लाते हैं। अथवा तालाबों का मैला पानी पी २ कर अनेक रोगों के उग्र प्रकोपों के शिकार बने रहते हैं। हा हन्त! गङ्गा यमुना आदि पवित्र नदियों से सरसब्ज़ इस आर्य्यावर्त्त में, हमारे सात करोड़ भाई अरब और ईरान के रेतीले प्रदेशों की तरह पानी बिना कष्ट भोगते रहें, तो बताओ? इन्हें इस पवित्र भू भाग में जन्म धारण करने का क्या फल मिला।

बृद्धः—अजी, महाराज, ये लोग स्वभाव से ही नीच हैं। इन्हें कोई कितना ही समझावे कुछ समझते ही नहीं। ये तो अपनी इसी हालत को अच्छी समझते हैं। एक दोहे में कहा है-

ऊंच ऊंच से मिलत है, मिलत नीच से नीच।
पानी पानी में मिलत है, मिलत कीच में कीच॥

साधुः—कुछ (हंसकर) महाशय जी, इसी का नाम तो भूल है स्वभाव से कोई जाति नीच नहीं होती। हां, आचार हीन होने से नीच कहलाने लगती हैं। आज जिन्हें आप ऊंची जाति देखरहे हैं इतिहास बतलाता है कि किसी समय ये भी निम्न कोटि में ही थीं, फिर आचार और व्यवहार के सुधार से सुधर गईं। हमने घृणा की दृष्टि से देख २ कर इन

लोगों के हृदयों को नितान्त कमज़ोर करदिया है। किस के जन्म सिद्ध अधिकारों को हनन करना कैसा घोर पाप है, आज इस पाप का प्रायश्चित्त यही होसकता है कि हिन्दू धर्माभिमानी लोग दत्तचित्त होकर इन भाइयों की नैतिक तथा माली हालत के सुधार में लगजांय। प्रत्यक्ष उदाहरण है कि ईसाइयों की मुक्ति फ़ौजों ने कई लाख कञ्जर और डूमों को ईसाई बनाकर अपने में मिला लिया है। अब वे मसीह के पक्के भक्त बनगए हैं, उनकी सन्तान पढ़ने लिखनेवाली सभ्य क़ौम कहलाने लगी है। परन्तु हम लोगों ने तो ऊंचा और नीचा इन दो शब्दों को ही मुद्दत से कण्ठस्थ कर रक्खा है। न तो स्वयं आगे को बढ़ें और न दूसरे को बढ़ने दें एक मोटी मिसाल है कि (मर न मंगा देय) महाभारत में लिखा है कि एक समय विश्वामित्र ऋषि एक ऐसे गृहस्थ के यहां गए, जिसे वर्त्तमान में हम लोग अछूत कहकर पुकारते हैं देखिये:—

प्रविश्य च गृहं रम्य मासने नाभिपूजितः।
पाद्य माचमनीयञ्च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः॥

वनपर्व अ० २७

अर्थात् गोमय आदि से लिपे पुते अति रमणीय उस के घर में ऋषिवर विश्वामित्र ने प्रवेश किया, और उस गृहस्थ ने आसन बिछा कर ऋषि को चरण धोने के लिये तथा आचमन करने के लिये जल दिया, ऋषि ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। इस से मालूम होता है कि उन ऋषि मुनियों का उदार धर्म आज कल के धर्म ध्वजियों जैसा नहीं था, जो दूसरे की हवा लगते ही बिगड़ जाय, उन का धार्मिक विश्वास इतना लज्जायुक्त नहीं था कि किसी अछूत से छूने मात्र से ही लज्जावती के वृक्ष की तरह मुरझा जाय। उन

तत्वदर्शी तपोधन तापसों का धर्म किसी मरखने पशु की तरह नहीं था, जो किसी को भी अपने पास न आने दे, उन की धार्मिक व्यवस्था किसी आज कल गृहस्थ के, उस कूएं की तरह नहीं थी जो कि उस ने अपने घर के चौक में बनवा रक्खा हो और पानी पीने के लिये किसी को भी आज्ञा न देता हो। आप ऐसे कूएं के विषय में किसी डाक्टर से पूंछिये वह एक दम बिना सङ्कोच के कह देगा कि यह कूआं अनेक दुःखदायी रोगों का उत्पादक है। उन मान्यास्पद मुनियों का धर्म किसी एक घर में रक्खे हुए दीपक की तरह नहीं था, जो घर से बाहर की वस्तुओं को दिखा ही न सके। किन्तु उन का धर्म दिवाकर की तरह सब को प्रकाशित करने वाला बुरी भावनाओं को समूल विनष्ट करने वाला, पापियों को धर्मात्मा बनाने वाला, नीच को ऊंचा करने वाला, कमज़ोर में विपुल बल भरने वाला और हिंसकों को दया धाम बनाने वाला था। क्यों कि उन का धर्म सब समर्थ था, और सर्व समर्थ को कोई दोष नहीं लगताः—

समरथ को नहिं दोष गुसाई।
रविपावक सुरसरि की नाई॥

वृद्ध—(कुछ लम्बा श्वास लेकर) अजी अब तो सब एक होना ही है किसी का क्या वश है, समय सब कुछ करा लेता है।

साधु—बात तो ऐसी ही है और हिन्दू जाति का कल्याण भी तभी होगा जबकि एक बार सब एक होजांय अब अन्याय की पराकाष्ठा हो चुकी है। भारतवर्ष के सामाजिक बल को छूआ छूत की बीमारी बहुत कुछ खो चुकी है। इस के मुक्ति पथ में घृणा की असह्य वायु काफ़ी कांटे बो चुकी है। यह

विश्व-विजयिनी जाति पांच हज़ार वर्षों से आज तक खूब सो चुकी है। इस के सामाजिक कठोर नियमों से नीची कह-लाने वाली जनता भली प्रकार रो चुकी है। विचार परम्परा तो देखिये ? जिन कूओं पर सरकार की तरफ़ से चर्मकारों को पानी भरने की इजाज़त मिल चुकी है उन पर वे अपने घड़ों को कूए की मन पर नहीं रख सकते। अर्थात् मैले कुचैले पैर लेकर तो कूए पर चढ़ जांय परन्तु अच्छी जगह रखने योग्य घड़ों का ऊपर नहीं रख सकते। इस फिलासफ़ी का भा कोई अन्त है ? मैंने एक दिन एक पण्डित जी के मुख से सुना था। उन्हों ने भी ऐसा ही लम्बा श्वास लेकर अपने पास बैठे हुए आदमियों से कहा थाः—

प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्ववर्णाः द्विजातयः।

भाई, अब घोर कलियुग आवेगा तो सब द्विजाति हो जांयगे यह सब कुछ शास्त्रों में पहिले ही लिखा है, सोई वर्त्तमान में हो रहा है। यह सुन कर मैंने कहा कि महाराज यदि शास्त्रों की ऐसी ही आज्ञा है तो आप इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं ? उन्हों ने उत्तर दिया कि ऐसा हमारा स्वभाव ही है। अन्दर से तो हम भी इन दीन भाइयों का उद्धार चाहते हैं। मैंने कहा कि महाराज ! यदि यही बात है तो—

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्॥

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के मन वाणी और कर्म में एक ही भाव हुआ करता है। और दुष्ट पुरुषों के मन में कुछ, तथा वचन में कुछ, एवं कर्म में कुछ और ही हुआ करता है। पण्डितजी ने कहा कि भाई यदि हम ऐसा न करें तो हमारा सारा ही

काम ख़राब हो जाय। बस फिर मैं क्या कहता ? आप ने अभी जो एकमएक होने की बात कही थी, सो एकमएक तो हम उसी दिन होगए थे जिस दिन हमारे ऊपर शासन सत्ता की बागडोर विदेशी वणिकों ने अपने हाथ में लेली थी। आप ही बताइये सरकारी नौकरी करने वालों से क्या बचा है? जहाजों पर माल लादने वाले हिन्दू कुलियों को गोमाँस भी लादना पड़ता है। जिस विलायती कपड़े में चर्बी लगती है, उसे सब खुशी से पहिनते हैं। बम्बई की चोनी का इस्तेमाल करते हैं। नल का पानी पीते हैं। रेलगाड़ी में सभी बैठते हैं, क्या कोई कह सकता है कि भङ्गी क्यों आबैठा, उत्तर मिलेगा कि टिकट लेकर। चमारों और धानकों का घी मुसलमान दूकानदार ले आते हैं, और बाज़ार में बेचते हैं, उसे सब खाते ही हैं। सोडावाटर की बोतल पीते ही हैं। जिस खांड और शक्कर को चमार मज़दूर पैरों से मलकर साफ़ करते हैं, उसे बिना संकोच सब खाते हैं। चमारों और मुसलमानों के हाथ से रस पीते हैं। कहांतक कहैं, इत्यादि बातों को थोड़े से हिन्दुओं को छोड़ सभी करते हैं। फिर भी हम सबसे बड़े, इसी का नाम तो अन्धेर नगरी है। इन हानिकारक बातों का तो हमने कुछ भी प्रतिकार नहीं किया, किन्तु अपने परिवार को ही छिन्न भिन्न करना सीखा। अनेक सदियों से (गेहेशूर) और (गेहेनर्दी) बने रहे, अपने से छोटे को और बड़े का श्वान समपग चाटाना ही हिन्दू जाति के बहुत से मनुष्यों का काम रहगया है। इस भूल का कुपरिणाम यह हुआ कि आज भारतवर्ष में दश वर्ष के अन्दर पचास हज़ार हिन्दू तो यवन बन गये और एक लाख बीस हज़ार ईसाई बनगए। परन्तु हमें ख़बर ही नहीं, ख़बर तो तभी होती, जब हम अपनी जाति से हमदर्दी

रखते। आप कभी किसी बानरी के बच्चे को पकड़कर देखिये, बानरों के हल चाल का कैसा तमाशा होता है। इसी का नाम तो हमदर्दी या सत्व रक्षा है। आज हिन्दू समुदाय किसी छोटे भाई को आततायी के हथों पिटता देखता रहता है, परन्तु उसे बचाने का उत्साह उसके मन में नहीं होता। इस लिये हिन्दू जाति मुर्दा कहलाती है। क्योंकि मुर्दे में सुख दुःख, हानि लाभ, मान अपमान आदि बातों का भान नहीं होता। जबतक आपके शरीर में प्राण-संचार सुचारु रूप से हैं, तब तक यदि आपके पैर में कहीं कांटा भी लगजाय तो मस्तक में तत्काल ही वेदना होजाती है, और आपका मुख सी-सी शब्दों से शोकोद्गार करने लगजाता है तथा हाथ भी एकदम उसी जगह पहुंचा जाता है, जहां कि कांटा लगा हुआ है बस, जबतक आप उसे न निकाल लेंगे तबतक सुख से सोना मुश्किल है, अब यदि आप के मुख और हाथ यह विचार कर लें कि हम तो ऊंचे स्थान में विराजमान हैं, हमें क्या परवाह है यदि पैर में कांटा लग गया तो, और यही सोच कर उस कांटे को न निकालें तो इस का यह फल होगा कि आप का पैर, पक जायगा एवं मानसिक वृत्ति को दिन रात के लिये दुख दर्द का गुलाम बना देगा। इसी प्रकार जिस समय भारत वर्ष के ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र परस्पर सहानुभूति का भाव रखते थे उस समय यदि किसी छोटे भाई को कहीं से आघात पहुंचा तो ब्राह्मण उस की रक्षा के लिये क्षत्रिय को प्रेरित करता था, और क्षत्रिय उस की रक्षा करता था, एवं वैश्य धन धान्य से उस का पालन पोषण करता था, शूद्र वर्ण भी इन की इस कृतज्ञता के वशीभूत होकर तीनों वर्णों की सेवामें अपना तन मन समर्पण

कर देता था। परन्तु अब वे भाव कहां हैं अब तो यह कहावत चरितार्थ हो रही है कि:—

चाहे कोई मरे चाहे कोई जिये।
सुथरा घोल बताशे पिये॥

आर्य्य धर्म के विशाल वृक्ष की जड़ को तो काले और सफ़ेद रङ्ग के दो चूहे, रात दिन दमादम काट रहे हैं, और हम उस के ऊपर बैठे हुए सानन्द अपने उच्चपन के राग अलाप रहे हैं। क्या कहीं इस बेख़बरी को भी कुछ ख़बर है? किसी ने किसी वैद्यक ग्रन्थ में इस भयानक भूल की भी अचूक दवा देखी है?

परमात्मन्! आप ही पतित पावन कहलाते हैं, 'दयामय! आप ही भारत वासियों को सुबुद्धि प्रदान कीजिये। इतना कह कर वह दुखित हृदय संन्यासी ध्यानावस्थितसा होगया॥

सप्तम तरंग

शुद्धि व्यवस्था

वृद्ध—महात्मा जी ! मैं एक बात तो भूल ही गया था, जो मुझे सब से पहिले पूछनी चाहिये थी। वह यह है कि उस पण्डित ने बहुत से शास्त्रों के प्रबल प्रमाण सुना कर बड़े ज़ोरों के साथ कहा था कि मुसल्मान ईसाई आदि कोई भी क्यों न हो सब को शुद्ध कर के आर्य्य धर्म में प्रविष्ट कर लेना चाहिए। इस बात को सुन कर मुझे बड़ा अचरज हुआ। क्या आज तक कभी ऐसा हुआ भी है ?

साधु—कभी क्या हमेशा से ऐसा होता आया है हां बीच में यह पुण्य प्रगति रुक गई थी, इसी से यह हिन्दू क़ौम मुर्दा कहलाने लगी क्योंकि प्राणयुक्त पदार्थ के मुख्य लक्षण हैं कि आहार का ग्रहण करे एवं ग्रहण किये हुए को पचावे नितरां दुष्ट अन्न और अजीर्णीय पदार्थों का मल रूपेण त्याग करे, और अपनी सन्तान का विस्तार करे। एवं क्रिया की प्रति क्रिया किया करे, बस जब तक आर्य्य जाति जीवित दशा में थी, तब तक ऐसा ही होता रहा। ब्रह्मावर्त्त से आर्यावर्त और आर्यावर्त से उत्तर दक्षिण भारत, गान्धार, बलख़ बुख़ारा, चीन, जापान, बर्मा, कम्बोडिया, जावा, बाली सुमात्रा आदि द्वीपों में इस जाति के शरीर तथा सन्तान का विस्तार होता रहा और प्रेम भाव अनेक हीनताओं को खोता रहा, आर्य्य धर्म नई २ जातियों का आहरण और अपने विशाल कलेवर में धरण एवं सम्मेलन करता रहा। और जब से यह कार्य्य रुका तभी से इस धर्म की शक्ति का ह्रास होने लगा। वार्धक्य आ

गया और हीनता, मलीनता एवं क्षीनता तथा अधीनता आती गई चारों ओर से संकोच ही संकोच होने लगा विस्तार का तो नामो निशान भी न रहा। यह सब कुछ भूल के कारण ही से तो हुआ। यदि यह डायन भूल न होती तो हिन्दू जाति अपने चिर संचित गौरव को क्यों खोती, फिर यह दुर्दशा भी न होती, आज यह जाति सुख चैन से सोती, इस की सन्तान सर्व सम्मान्य होती, बस भूल ने ही सर्वनाश का बीज बो दिया अनेक फ़िरके बनते चले गये, भारत वर्ष विभिन्नता का केन्द्र ही बन गया, अनेक मत मतान्तरों ने इस की संघ शक्ति को समूल विध्वंस कर दिया। पूज्यपाद स्वामी शङ्कराचार्य जी महाराज ने अपने जीवन काल में साठ मतों का खण्डन किया उनमें से कुछ के नाम यहां दिये जाते हैं:—भागवत मत, षड्विधवैशाव मत, पंचरात्रागम मत, वैखानस मत, कर्महीन वैष्णव मत, हैरण्यगर्भ मत, अग्निवादी मत, सौर मत, महागणपति मत, हरिद्रागणपति मत, नवनीतगणपति मत, उच्छिष्ट गणपति मत, स्वर्णसन्तान गणपति मत, शक्ति मत, महालक्ष्मी मत, वाग्देवता मत, वामाचार मत, कापालिक मत, क्षमामिकैकदेशीत, चार्वाक मत, सौगतमत, बौद्धमत, जैनमत, मल्लारीमत, विश्वकसैन मत, मन्मथ मत, कुवेरमत, इन्द्रमत, यम मत, वरुणमत, शून्यवादी मत, लोक मत, गुणमत, सांख्या मत, योग मत. हठयोग मत, पीलूवाद मत, कर्म मत, चन्द्रमत, राहुमत, क्षपणक मत, पितृमत, सिद्धमत, गन्धर्वमत, बृहस्पति मत, भूत,बैतालमत, अघोरीमत, गरुड़मत, आदि इन मतों का तथा किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कस, आभीर, कंक, यवन, खस आदि जातियों का खण्डन करके उन्हें शुद्ध करके आर्य्य धर्म में प्रविष्ट कर लिया। पूज्य शंकराचार्य के पास इन सबको शुद्ध करने के लिये केवल यही

प्रायश्चित्त था कि एक दो दिन व्रत कराकर यज्ञोपवीत पहनाया जावे और गायत्री मंत्र बतलाया जावे । उन्होंने थोड़े से दिनों में पच्चीस करोड़ मनुष्य, प्रायश्चित कराकर एवं यज्ञोपवीत पहनाकर और गायत्री मंत्र का उपदेश देकर वर्णाश्रम धर्म के हामी बनालिये । यद्यपि वे लोग चारसौ, पांचसौ वर्ष तक वर्णाश्रम धर्म से बाहिर रहे उनका खाना पीना भी वेद विरुद्ध था, क्योंकि वे सब प्रकार के मांस खा लेते थे, फिर भी उन्हें शुद्ध करने में कुछ भी आगा पीछा न सोचा गया, यह वृत्तान्त उनके जीवन चरित्र अर्थात् (शंकरदिग्विजय) में लिखा है । मैंने एक पंडित जी की लिखी हुई एक छोटी सी पुस्तक देखी थी उसमें उस योग्य पंडित ने पुराणों के बहुत से प्रमाण देकर दशहज़ार यवनों की शुद्धि होनी साबित की है । मैं भी आपको इस विषय में सैंकड़ों प्रमाण सुना सकता हूं, परन्तु ऐसा करने के लिये समय बहुत कम है फिर भी दो चार प्रमाण तो अवश्य ही सुनाऊंगा ? उन्हीं से आपको पता लग जायगा कि धर्म शास्त्र इस विषय में अपनी क्या सम्मति देते हैं । देखिये महर्षि आपस्तम्ब कहते हैं :—

बलाद्दासी कृतो म्लेच्छै, श्चाण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ।
अशुभं कारिते कर्म, गवादि प्राणि हिंसनम् ॥
उच्छिष्ठ मार्जनं चैव, तथा तस्यैव भक्षणम् ।
तत्स्त्रीणां तथा संग, स्ताभिश्च सह भोजनम् ॥
कृच्छ्रान्सम्वत्सरं कृत्वा, सान्तपान् शुद्धि हेतवे ।
ब्राह्मणः क्षत्रिय स्त्वधर्म, कृच्छ्रान्कृत्वा विशुद्धति ॥

अर्थात् जो आर्य्यधर्म को मानने वाले पुरुष म्लेच्छ चांडाल दस्यु आदि नीच पुरुषों ने बलात्कार से भ्रष्ट कर दिये हों और

उनसे गौ आदि पूज्य पशुओं के मरवाने का अशुभ काम भी करा लिया हो अथवा अपने झूठे बरतन भी मंजवाये हों, और अपना झूठा भोजन भी खवाया हो, एवं उनकी स्त्रियों के साथ दुष्कर्म भी कर लिया हो, या उन स्त्रियोंको अपने साथ भोजन कराया हो तो एक वर्ष तक व्रत करा कर उन्हें शुद्ध कर लेना चाहिये। उनमें यदि कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय पतित हो गया हो, तो छः मास के व्रत रखने से ही शुद्ध हो जाता है, और यही व्यवस्था बृहद् यम स्मृति के पांचवें अध्याय में लिखी है तथा इसी व्यवस्था को महर्षि पराशर ने अपनी स्मृति के छठे अध्याय में कहा है और विष्णु पुराण में तो गङ्गास्नान से ही शुद्धि लिखी है सो इस प्रकार है:—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि, भक्त्याऽभक्त्याऽपिवा कृतम्
गंगास्नानं सर्वविधं, सर्व पाप प्रणाशनम् ॥
भ्रमन्ति निर्विषाः सर्पाः, यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् ।
गंगाया दर्शनात् तद्वत्, सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥

अर्थात् जानकर अथवा बिना जाने, भक्ति से अथवा बिना भक्ति से, भी किया हुआ गङ्गा स्नान, सब पापों को दूर करके मनुष्यों को शुद्ध कर देता है। जिस प्रकार गरुड़ के देखते ही सर्पों का विष विनष्ट हो जाता है ठीक इसी प्रकार गङ्गा के दर्शनमात्र से ही सब पाप भाग जाते हैं। कहिये जिस धर्म की नदियों में भी इतनी शक्ति हो तो फिर उस धर्मके मानने वालों को दूसरे पतित मनुष्यों का शुद्ध कर लेना क्या बड़ी बात है। जहां गङ्गा जल पिलाया कि शुद्ध हो गया। भविष्य पुराण में कण्व ऋषि ने दश हजार म्लेच्छों को शुद्ध किया लिखा है उसे मैं आप को पहिले ही सप्रमाण सुना चुका हूं, देवल स्मृति में भी शुद्धि करनी लिखी है:—

अपेयं येन संपीतमभक्ष्यं येन भक्षितम्।
म्लेच्छैर्नीतेन विप्रेण, ह्यगम्या गमनं कृतम्॥
तस्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि यावदेकं तु वत्सरम्॥ इत्यादि

भावार्थ यह है कि जिस ब्राह्मण ने म्लेच्छों के वशीभूत हो कर, नहीं पीने योग्य वस्तु को पी लिया हो, या नहीं खाने योग्य को खा लिया हो, अथवा नहीं गमन करने योग्य स्त्री से गमन कियाहो, तो उसकी शुद्धि एक वर्ष तक व्रतादि रखने से हो जाती है। गरुड़ पुराण में भी शुद्धि करनी लिखी है:—

श्रीराम राम रामेति ये वदन्त्यपि पापिनः।
पाप कोटि सहस्रेभ्य स्तेषां संतरणं ध्रुवम्॥

जो राम राम मंत्र का जाप करें चाहें वे कितने ही पापी क्यों न हों, सब पापों से दूर होकर शुद्ध होजाते हैं। पराशर ऋषि अपनी स्मृति में कहते हैं:—

मुनिवक्त्रोद्गतान्धर्मान् गायन्तोवेदपारगाः।
पतन्तमुद्धरेयुस्तं धर्मज्ञाः पाप संकरात्॥

अध्याय ६ श्लोक ३५

भावार्थ यह है कि ऋषि मुनियों के मुख से निकले हुए धर्मों का स्मरण करके, धर्म शास्त्रों का अभ्यास करनेवाले, वेद पारंगत धर्मज्ञ लोग पापी को पाप समुदाय से हटाकर शुद्ध करलें। श्रौर देखिये गोस्वामी तुलसीदास जी रामायण के अरण्य कांड में श्रीरामचंद्र जी के प्रिय सखा गुह (भील) का वर्णन करते हुए कहते हैं:—

चौ०-रामराम कहि जो जमुहांहीं। तिनहिं न पाप पुण्य समुहांहीं॥
उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

दोहा—श्वपच शबर खल यवन जड़, पामर कोल किरात।
राम करत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥

जब भ्रातृ स्नेह से विह्वल होकर भारत भूषण भरत जी अपने भाई से मिलने के लिये बन में जारहे थे, तो रास्ते में वही निषाद फिर मिला। और जब उसने समझ लिया कि ये रघुकुल-कमल दिवाकर राजीव लोचन राम के लघु भ्राता हैं तब उसने अपनी कृतज्ञता इस प्रकार प्रगट की:—

चौ०-कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक वेद बाहर सब भांती॥
राम कीन्ह अपना जबहाते। भयउ भुवन भूषण तबहीते॥

इत्यादि प्रमाणों से आपको पता लग गया होगा कि आर्य्य लोग पहिले ही से अपनी जाति में सबको मिलाते चले आए हैं। यदि ऐसा न होता तो यह धर्म आज तक कैसे अनेक आघातों से बचसकता था, सब से बड़ा धर्म वही है, जो अन्य धर्माभिलाषियों को शरण देकर सुरक्षित रख सके। सब से पहिली बात तो आज अपनी संख्या को बढ़ाकर उसे क़ायम रखने की है, देखते नहीं हो चारों ओर से इस हिन्दू जाति को हज़म करने के लिये अन्य मज़हब वाले मुख फाड़े खड़े हैं। स्यात् आपको मालूम न हो कि इस हिन्दू धर्म की चटनी करने के लिये, संसार में अनेक सिलबट्टे तैयार होचुके हैं, और होते जाते हैं। बड़ा संकट का समय उपस्थित है। यदि हिन्दू जाति ने अपनी विशाल भूल को त्यागकर अब भी अपनी हस्ति को क़ायम रखने का विचार नहीं किया तो कुछ ही समय में यह विश्व-विख्यात जाति दुनियां से नेस्त नाबूद होजायगी। मैंने आपको बतलाया था कि हमारी तो इस गङ्गा में भी इतनी शक्ति है कि इसके दर्शन मात्र से ही, सब शुद्ध हो जाते हैं, और इस से विशेष

हमारे शंख के शब्द में शक्ति मौजूद है, कि जितनी दूर तक उस का शब्द जाता है उतनी दूर तक सब को पवित्र कर देता है। क्या पहिले की अपेक्षा इस गङ्गा में या शंख के शब्द में कुछ अन्तर हो गया है ? नहीं २ यह तो वैसे ही हैं किन्तु हमारे अर्थात् इस हिन्दू जाति के उदार हृदय में संकोच रूपी रोग लग गया है।

वृद्ध—महात्मा जी ! अपनी संख्या बढ़ा कर क्या करना है विशुद्ध धर्म के मानने वाले तो थोड़ ही, बहुत हैं। इस लिये शुद्ध धर्म के बीज की रक्षा करनी चाहिये, सब को एकम एक करने से क्या काम है ?

साधु—बड़ेजी क्षमा कीजिये ! आप बीज का असली अर्थ नहीं जानते यदि जानते होते तो ऐसा कदापि नहीं कहते, देखिये बीज उसे कहते हैं जो अपने सदृश सन्तान बना सके बीज का लक्षण यह है कि:—

स्व सदृश संतान संख्या वर्द्धक शक्तिमत्वं बीजत्वम्

अर्थात् जो अपने सदृश संख्या बढ़ावे वही बीज है।

बीजाद्बीज मिवापरम्।

अर्थात् जब तक बीज में बीजत्व शक्ति रहती है तब तक वह बीज अपने जैसे सैंकड़ों और हज़ारों बीजों को उत्पन्न करता रहता है, और जब उस में वह शक्ति नहीं रहती तो अपने आप भी विनष्ट हो जाता है। यदि हिन्दू जाति ने बीज के असली अर्थ को नहीं जाना, तो कुछ ही काल में यह जाति (दग्ध बीज कल्पया) या (षंढ तिला) हो जायगी इसमें कोई संदेह नहीं। अब मैं आप को एक इतिहास की बात सुनाता

हूं जिस से आप को मालूम हो जायगा कि इस हिन्दू जाति ने अपने स्वरूप को भूल कर कितनी हानि उठाई है।

ईसा की चौदहवी शताब्दी के अन्त में सुल्तान सिकन्दर शाह नाम का एक आदमी, काश्मीर का राजा हुआ उस का ख़ानदान नौ मुस्लिमों का था जो अफ़ग़ानिस्तान के पहाड़ों से आया था और काश्मीर के हिन्दू राजा के यहां नौकर हुआ था फिर उन ही में से एक शाह मीर (जो सिकन्दर शाह का मूरिस था) उस हिन्दू राजा को मार कर काश्मीर का राजा बन बैठा, उस सिकन्दर शाह ने काश्मीर के सब पण्डितों को अपने पास बुलाया, और कहा कि मैंने अपना मजहब अभी तक ठीक नहीं किया है। मैं कोई अच्छा मज़हब क़बूल करना चाहता हूं। अगर आप लोग अपने मज़हब में मुझे लेलें तो मैं शरीक हो जाऊं। यह सुन कर पण्डित समुदाय ने कहा कि हिन्दू तो हिन्दू के घर जन्म लेने से ही होता है। अतः आप हमारे मज़हब में नहीं लिये जा सकते। यह सुन कर और विशाल हिन्दू धर्म की छत्र छाया से निराश हो कर उस ने सब मौलवियों को बुला कर कहा कि आप लोग मुझे अपने मज़हब में ले सकते हैं ? यह सुनते ही सब मौलवियों ने एक स्वर से बड़े ज़ोरों के साथ कहा ज़रूर ! ज़रूर !! ज़रूर !!! बस वह मुसलमान हो गया और असली मुसलमान होने के बाद उन मौलवियों से कहा कि अब मुझे क्या करना चाहिये ? मौलवियों ने जवाब दिया सब से पहिला काम आप का यह है कि इन पण्डितों को बोरों में भरवा कर झेलम नदी में डुबा दो, और ऐसा ही किया गया। इस भूल का कुपरिणाम यह हुआ कि आज उसी काश्मीर में जो कि भू स्वर्ग कहलाती थी फ़ी सदी नब्बे मुसलमान और दश हिन्दू महानुभाव रहते हैं।

अभी तक भी इन मुसलमानों के कौल और भट्ट आदि नाम मौजूद हैं। अब भी तो भारतवर्ष की विद्वन्मण्डली को शुद्धि करने के लिये व्यवस्था देनी पड़ी यदि पहिले से ही इतनी समझ आजाती तो क्या ही अच्छा होता। इसी का नाम तो भूल है, जहां भूल है वहां सब फल प्रतिकूल है। जिस जाति में ऐसी भूल है उस की बुद्धि पर बेसमझी की धूल है, इस लिये भूल को भूल कर ही कार्य करना मङ्गल मूल है।

वृद्ध—महात्मा जी! शास्त्रों के प्रमाणों से तथा युक्तियों से तो आप ने शुद्धि करना ठीक बतला दिया। अब कृपया यह बतलाइये कि ऐसी शुद्धि किसी ने कर के भी दिखलाई है, या नहीं?

साधु—इस विषय में तो मैं आपसे कह भी चुका हूं और कुछ यहां भी बतलाए देता हूं, देखिये, महाराज चन्द्रगुप्त ने बाबिल के बादशाह सेल्यूकस यूनानी की लड़की को शुद्ध करके उसके साथ विवाह किया इस बात को दो हज़ार वर्ष होचुके हैं। उदयपुर के राणा ने ईरान के राजा नौशेरवां पारसी की पुत्री को शुद्ध करके विवाह किया था, जिसे तेरहसौ साल हुए, लाहौर के सम्मान्य पण्डितों ने राजा सुखपाल की शुद्धि की जिसे आठसौ वर्ष हुए। बाबा नानक देव जी ने मरदाना मुसलमान को शुद्ध किया और उसके मृत शरीर को खुर्जा शहर में अग्नि में दाह किया, इसे पांचसौ वर्ष के क़रीब हो-चुके हैं। पण्डित बीरबल और राजा टोडरमल ने अकबर बादशाह का प्रायश्चित्त कराया और उसका नाम महाबली रक्खा गायत्री सिखलाई, संध्या पढ़ाई, यज्ञोपवीत पहिनाया और गो बध का निषेध तक कराया, उसने अपने राज्य में अनेक सुधार कार्य्य किये। अत्याचारी औरङ्ग़ज़ेब के समय में

गुरु गोबिन्दसिंह ने समस्त धर्मावलम्बियों को सिक्ख बनाया, उनके दो सिक्खों को मुसलमानों ने पकड़कर बलात् मुसलमान करलिया था जब वे गुरु गोबिन्दसिंह के पास आये तब उन्होंने उनको फिर हिन्दू बनालिया! महाराज रणजीतसिंह ने खुद अपने लिये और कई सरदारों के लिये मुसलमानों की बेटियां लीं और शुद्ध करके उनके साथ विवाह किया। महाराज रणबीरसिंह जो कि जम्बू नरेश थे, आपने अपने तीन राजपूत सिपाहियों को मुसलमान बनने के बाद फिर हिन्दू बना लिया। जम्बू के विद्वान् पण्डितों ने (रणबीर प्रकाश) नाम का एक ग्रन्थ बनाया, जिसके अनुसार चालीस पचास वर्ष का मुसलमान हुआ हिन्दू फिर अपने धर्म्म में सम्मिलित होसकता है। काशी की पण्डित मण्डली भी इस से सहमत हुई, और शुद्धि की व्यवस्था दे दी; स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने क़ाज़ी मुहम्मद उमर साहब सहारनपुर निवासी को शुद्ध करके आर्य्य बनाया और उनका नाम अलखधारी रक्खा; सन्त ज्वालासिंह जी ने चालीस मुसलमानों को शुद्ध करके वैदिक धर्म में प्रवेश कराया। अभी थोड़े से दिन हुए ज़िला अलीगढ़ की तरफ़ कई लाख मलकानों को शुद्ध किया है। और महाराज इन्दौर ने मिस मिलर नाम की एक रमणी को शुद्ध कराकर उसके साथ विवाह किया, जिसका हिन्दू नाम शर्मिष्ठा देवी है, इस शुद्धि को महाराज शंकराचार्य्य ने किया! थोड़े से दिनों में ही आर्य्य समाज ने हज़ारों मुसलमान ईसाई आदिकों को शुद्ध करलिया है। अब तो शुद्धि का काम बड़े जोरों से चल रहा है, पर हिन्दू जाति में संकोच ने अभी अपना रोब जमा रक्खा है मान्यवर रामानुजाचार्य्य ने अनेक, म्लेच्छों को अपना वैष्णव

मंत्र सुनाकर शुद्ध किया। परमात्मा से प्रार्थना है कि फिर भी इस देश में इसी प्रकार के आचार्य्य और महानुभाव पैदा हों जो देश तथा जाति की रक्षा करते रहें।

कवित्त

शुद्ध हिन्दू धर्म ने ही शुद्ध किये देश सारे,
अधर्म अशुद्धता को वेद ने पछारा है।
आगम पुराण सभी शुद्धि को जनाय रहे,
लाखों नर नारियों ने जीवन सुधारा है॥
नानक गोविन्द रामानुज रामानन्द आदि,
सज्जनों ने पापियों को मन्त्र दे उभारा है।
आज हिन्दू जाति में हैं भूल के कुभाव भरे,
छुआछूत में ही धर्म केवल हमारा है॥

इतना कह कर महात्मा जी गम्भीर दृष्टि से गङ्गा की ओर देखने लगे।

अष्टम् तरंगः

वैदिक वर्ण व्यवस्था

वृद्ध—महात्मा जी, उस पंडित ने एक बात और भी कही थी कृपया उसे और समझा दीजिये, वह कह रहा था कि प्राचीन ग्रन्थों में कहीं भी जन्म से वर्ण लिखा हुआ नहीं मिलता और गुण कर्म से वर्ण का होना तो सर्व सम्मत है, जब से जन्म से वर्ण मानने की परिपाटी पड़ी तभी से आर्य जाति कमज़ोर तथा गुणहीन हो गई। हिन्दू जनता ने वेदों की शिक्षा को भूल कर गुण, कर्म के परिणाम रमणीय सिद्धान्तों को जलाञ्जलि देदी और जन्म की महिमा को सर्व श्रेष्ठ मान लिया; बस, चाहे कितना ही दुराचारी, ज्वारी, दम्भी, नीच, पामर, कपटी, छली क्यों न हो यदि उस ने किसी ब्राह्मण के घर जन्म ले लिया है, तो सब का पूज्य है दूसरा चाहे कितना ही धर्मात्मा सदाचारी दयावान, जितेन्द्रिय, परेशप्रिय क्यों न हो यदि उस ने किसी अब्राह्मण के घर जन्म ले लिया है तो कदापि मान्य नहीं हो सकता ऐसी भयंकर भूल क्या २ नहीं करा सकती।

साधु—बड़े जी, बात तो ऐसी ही है, जैसा कि उस पंडित ने कहा था क्योंकि जन्म से वर्ण मानने में एक बड़ा भारी दोष यह है कि जिन गुणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनते थे वे गुण अब लुप्त प्राय हो गये हैं। एक ब्राह्मण घराने में जन्म लेने वाला पुरुष, अपने मन में विचारता है कि मैं तो जन्म से ही सब का पूज्य हूं, फिर विद्यादि सद्गुण प्राप्त करने में अधिक प्रयास क्यों उठाऊं। यदि कहीं विद्यादि सद्गुणों के न

होने से यजमान की कुछ अश्रद्धा सी होने लगी तो झट सुना दिया कि—

अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणः जगतो गुरुः ।
निर्दुग्धाऽपि गौ पूज्या, न च दुग्धवती खरी ॥

अर्थात् ब्राह्मण पढ़ा लिखा हो या बे पढ़ा हो वह तो सारे संसार का गुरु है । क्योंकि बन्ध्या गौ भी पूज्य होती है, परन्तु गधी चाहे कितना ही दूध क्यों न दे वह कदापि पूज्य नहीं हो सकती । और यदि पंडित जी से संस्कृत शब्दों का उच्चारण न हुआ तो महाराज तुलसीदास जी की उक्ति सुनादी ।

पूजिय विप्र शील गुण हीना, नाहि शूद्र गुण ज्ञान प्रवीना ।

यदि दुर्भाग्य वश कोई गुण ग्राही यजमान मिल जाय और कहने लगे कि—

किं-तया क्रियते धेन्वा, या न सूते न दुग्धदा ।
कोर्थो विप्रेण जातेन, यो न विद्वान्न भक्तिमान् ॥

अर्थात् ऐसी गौ का क्या किया जाय, कि जो न तो गर्भ धारण करे और न दूध दे, ठीक इसी प्रकार उस विप्र से भी क्या लाभ है, जो न तो विद्वान हो है और न भक्तिमान है । फिर तो गुरु जी को शोक सागर में गोते खाने पड़ते हैं, इस निश्चय का फल यह हुआ कि वर्त्तमान समय में सैकड़ों प्रकार के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यथा शूद्र मौजूद हैं । ऊंच नीच की शक्ति इतनी प्रबल हो गई कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण के हाथ का पानी पीने में भी संकोच करता है, भोजन करना तो दूर रहा । बस, शूद्रों तक भी यही संक्रामक रोग फैलता चला गया यद्यपि ये नामान्तर देश काल तथा वंश और व्यवहार के

आन्तर्य्य से पड़ गये थे, जैसे सारस्वत. कान्यकुब्ज, महाराष्ट्र, द्राविड़, गौड़, सरयूपारी, गुजराती, काश्मीरी, मिश्र आदि ब्राह्मण देशानुसार, तथा चन्द्रवंशी, रघुवंशी, यदुवंशी चौहान परमार, राठौर, शिसौधिया आदि क्षत्रियों के नाम वंश परम्परानुसार। एवं खंडेलवाल, चूरुवाल, माहेश्वरी, ओसवाल, अग्रवाल आदि वैश्यों के नाम परम्परा के अनुसार और कहार ग्वाल, अहीर, माली, कोरी, काछी, धीवर, छीपी, नाई, आदि शूद्रों के नाम काम करने से पड़ गये थे। भला इस में ऊंच नीच के अर्थ आडम्बर की क्या आवश्यकता थी। हा दैव! यदि हिन्दू जाति को अपने ऐसे ही भेद भाव बढ़ाने थे तो बीच में रुक क्यों गए? इसी प्रकार बढ़ते २ अंग्रेज़ ब्राह्मण, जर्मन ब्राह्मण, फ्रांसीसी ब्राह्मण, अरबी ब्राह्मण, तुर्की ब्राह्मण, यवन ब्राह्मण, ईसाई ब्राह्मण, पारसी ब्राह्मण, यहूदी ब्राह्मण आदि भी बन जाते। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र भी विभक्त हो जाते। किन्तु ऐसा तो हुआ नहीं, हमने तो अपने ही परिवार को छिन्न भिन्न करना सीखा। तभी तो हर एक दशाब्दी में जब मनुष्यों की गणना होती है तो हिन्दू लोग घटते जाते हैं और ईसाई तथा मुसलमान बढ़ते जाते हैं। सौभाग्य वश यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती नहीं आते तो हिन्दुओं की संख्या अब तक अगुलियों पर गिनने योग्य हो जाती, इस महात्मा की कृपा से हिन्दू जाति को कुछ २ होश आने लगा है बस इतने से ही विधर्मी लोगों को बड़ी चिन्ता हो चली है कि यह क्या हो गया? इस मुर्दे में फिर प्राण संचार कैसे होने लगा, कौन ऐसा मुर्दे को जिन्दा करने वाला डाक्टर आ गया, क्या अब हमारा काम नहीं चलेगा? इत्यादि चिन्ताएं तो उन लोगों को इस हिन्दू जाति के थोड़े से ही होश

में आने से होने लगो हैं और जिस दिन यह सबल होकर खड़ी हुई तो सब के सब विधर्मी लोग ऐसे ही छिप जायंगे, जैसे केसरी के जागने पर शृगाल समुदाय छिप जाता है । यह सब कुछ गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था पर ध्यान देने से ही होगा अन्यथा नहीं।

वृद्ध—महाराज, वर्ण व्यवस्था शब्द का क्या अर्थ है ?

साधु—आपने यह प्रश्न बहुत अच्छा किया, इस शब्द की व्युत्पत्ति से ही आप को इसके अर्थ का बहुत अंश तक ज्ञान हो जायगा। इस वर्ण शब्द ने बहुत से लोगों को भ्रम में डाल रक्खा है सुनिये, व्यवस्था शब्द का अर्थ प्रबन्ध करना अथवा नियमित करना होता है। और वर्ण शब्द, वर्ण प्रेरण धातु से घञ् प्रत्यय होकर सिद्ध होता है। इसका अर्थ है, चुनना अथवा निर्वाचन करना अर्थात् नियुक्त करना। निरुक्त में इस शब्द के लिये लिखा है कि (वर्णो वृणोतेः) अर्थात् बरने योग्य या चुनने योग्य जो हों वही वर्ण कहलाते हैं। तात्पर्य्य यह है कि जो गुण कर्मानुसार यथायोग्य स्वीकार किए जायें, वेही वर्ण कहे जाते हैं। अत एव यथा योग्य गुण कर्मानुसार मनुष्य समुदाय को कर्त्तव्याकर्त्तव्य और अधिकारानधिकार की दृष्टि से विशेष भागों में विभक्त करना वर्ण व्यवस्था का असली उद्देश्य है। यदि जन्म से ही ये विभाग मनुष्यों में होते तो इसके लिये किसी व्यवस्था अर्थात् प्रबन्ध की आवश्यकता ही नहीं होती, और न निर्वाचन शब्द के जोड़ने की ज़रूरत पड़ती। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन वर्णव्यवस्था का, वर्त्तमान समय में प्रचलित इस देश की जाति पांति के कुत्सित और पतन कारक निश्चय से कोई सम्बन्ध नहीं। वर्ण व्यवस्था तो मनुष्य समाज को गिरने से बचाने वाली, सोतों को जगाने

वाली, अवनत को उन्नत करने वाली, एक से दूसरे को मिलाने वाली, धर्म अर्थ काम और मोक्ष के देने वाली परम सिद्धि है। परन्तु भारत वर्ष तो अपनी प्राचीन प्रणाली को त्यागता जाता है और अर्वाचीनता का पाठ पढ़ता जाता है। साथ ही साथ इसने अपने चिरसंचित उच्च गौरव को भी भुला दिया है क्यों कि शास्त्रीय वर्ण व्यवस्था का तात्पर्य समाज को छिन्न भिन्न करने का नहीं था किन्तु चार कामों को चार भाइयों में विभक्त करके एक महान् उद्देश्य की पूर्ति करने में था। यह वर्ण व्यवस्था तो एक बढ़िया रसायन है। जिसके सेवन करने से उच्च कक्षा की विद्या और तप से देदीप्यमान शान्तिनिकेतन आर्जवता आदि गुण-गण-गरिमा से युक्त त्याग मूर्ति ब्राह्मण, तथा शिक्षा और बाहुबल से जाज्वल्यमान तेजोराशी महा प्रतापी क्षत्रिय, एवं अनुभव और वाणिज्य में कुशल सहृदय परमोदार वैश्य, और सेवा धर्म में रत छल कपट से रहित शूद्र उत्पन्न होते थे। ऐसी वर्ण व्यवस्था का असली स्वरूप महाभारत शान्तिपर्व अध्याय एकसौ नवासी भृगु भारद्वाज सम्वाद, तथा अनुशासनपर्व अध्याय तीस और वन पर्व अध्याय तीनसौ बारह यक्ष युधिष्ठिर सम्वाद एवं वज्र सूचि कोपनिषद्, भविष्य पुराण अध्याय चालीस से छालीस तक, इसी प्रकार गीता का अठारवां अध्याय और मनुस्मृति के प्रथम द्वितीय तथा दशम अध्याय, एवं यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में भली प्रकार वर्णित है। जन्म से वर्ण की परम्परा ने हिन्दू जाती को कुछ का कुछ बना दिया। गौरव गिरि से एक दम नीचे गिरा दिया।

वृद्ध—महात्मा जी, आपके कथन से तो ब्राह्मणों की निन्दा सूचित होती है इस लिये आप का यह विचार ठीक मालूम नहीं होता।

साधु—शिव २, ब्राह्मणों को निन्दा करने का साहस मुझ जैसे व्यक्ति से तो कदापि नहीं हो सकता। यह आपके विचार की कमी है मेरे कहे हुए को बुद्धि को कसौटी पर रख कर स्वीकार कीजिए, तभी मेरे कथन का तात्पर्य्य मालूम होगा। मेरा तो विश्वास है कि—

ब्राह्मणो जायमानो हि, पृथिव्यामधि जायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां, धर्म कोषस्य गुप्तये॥

मनु० अ० १-८६

भावार्थ यह है कि मही-मंडल में धर्म रूपी ख़ज़ाने की रक्षा के लिये सभी प्राणियों का अधिपति ब्राह्मण ही उत्पन्न हुआ है।

ब्राह्मण जंगमं तीर्थं, तीर्थ भूताहि साधवः।
तेषां वाक्योदकेनैव, शुध्यन्ति मलिनाः जनाः॥
ब्राह्मणा यानि भाषंते, मन्यंते तानि देवताः।
सर्व देवमया विप्रा, न तद्वचन मन्यथा॥

पराशर स्मृ० अ०६

अर्थात् ब्राह्मण लोग चलने फिरने वाले तीर्थ हैं, एवं साधु भी तीर्थ रूप होते हैं, इनके वाक्य रूपी निर्मल वारि से पापी जन पवित्र होकर सद्गति को प्राप्त हो जाते हैं। वेदवित् ब्राह्मणों के मुखारविन्द से निकले हुए शब्दों का देवता भी मान करते हैं। क्योंकि वेदवेत्ता ब्राह्मणों में सब देवताओं का निवास है। महाराज मनु अपनी स्मृति में कहते हैं—

एतद्देश प्रसूतस्य, सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चारित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्व मानवाः॥

अर्थात् आर्य्यावर्त्त में जन्म लेने वाले अग्र जन्मा भूदेवों से पृथिवी मंडल के समस्त मानव समुदाय अपने २ चारित्र की शिक्षा लिया करते थे। भला ऐसे ब्राह्मणों की निन्दा कौन कर सकता है। निन्दा शब्द का अर्थ गुणों में दोषारोपण करना कहाता है क्या आप मेरे किसी शब्द से ऐसा साबित कर सकते हैं गुणों में गुण तथा दोषों में दोष कहना ही स्तुति कहलाती है अब आप ही बतलाइये कि मैं स्तुति कर रहा हूं या निन्दा। मैंने एक दिन एक ग्रन्थ में पढ़ा था कि यदि दैवयोग से किसी ग्राम में आग लग जाय तो उस ग्राम के निवासियों को चाहिये कि अपने बाल बच्चों की परवाह न करके ब्राह्मण के प्राणों को बचावें क्योंकि ब्राह्मण का मस्तिष्क वेद ज्ञान का भण्डार है और सब शास्त्रों के ज्ञान का भी आगार ऐसे ब्राह्मण के रहने से सब का सर्व सुधार है क्योंकि भवसागर में पड़ी हुई मानव धर्म की नौका का ब्राह्मण खेवनहार है यदि उसके प्राण पखेरू उड़ गये तो सब को हार ही हार है आपने बहुतों के मुख से सुना होगा कि ब्रह्म हत्या जैसी दूसरी हत्या नहीं है इस कथन का भी यही अर्थ है मेरा अभिप्राय तो किसी की भी निन्दा करने में नहीं है फिर ब्राह्मण देवताओं का कहना ही क्या है हां, जहां कहीं अवगुण तथा पाखण्ड का आधिक्य प्रतीत होता वहां २ उसको दूर करने की सदिच्छा से बहुत से सबल शब्दों के प्रयोग करने को विवश होना पड़ता है जैसे वैद्य लोग रोगी के रोग को दूर करने की इच्छा से उसे कड़वी औषधि खाने को देते हैं तो क्या उन वैद्यों को कोई दोषी ठहरा सकता है कदापि नहीं। इसी प्रकार ईर्ष्या, द्वेष को दूर करके सत्य कहने में भी कोई दोष मालूम नहीं होता वैसे तो संन्यास आश्रमी होने के कारण मुझे सब ही प्यारे हैं जैसा कि इस श्लोक में कहा है—

अयं निजः परोवेति, गणना लघु चेतसाम् ।
उदार चरितानान्तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

यह मेरा है और यह दूसरा है इस प्रकार की गणना संकुचित विचार वाले लोग किया करते हैं किन्तु उदार चरित महानुभावों का तो वसुधाभर ही परिवार हैं। भेद भाव से देखना आत्मज्ञान में विकलता पैदा करना है किन्तु फिर भी सत्य से मेरा प्यार है, असत्य से नहीं, गुणों में मेरा अनुराग है, अवगुणों में नहीं, ऋजुता का उपासक हूं, पाखण्ड का नहीं। धर्म में मेरा विश्वास है, अधर्म में नहीं। मैं न्याय के मार्ग में चलना चाहता हूं, अन्याय के नहीं। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि जो २ भाव मेरे आत्मा के समीप होकर मुझे आत्मिक दर्शन कराने में सहायक होते हैं वे ही मुझे अधिक प्यारे हैं, दूसरे नहीं। अतएव आप विश्वास रक्खें कि मैं किसी की निन्दा नहीं कर रहा, जो भी कह रहा हूं वह सब सुधार की शुभ इच्छा से ही कह रहा हूं। अभी जो मैंने आपको ब्राह्मणों की महिमा स्मृतियों के प्रमाण देकर सुनाई है वह उन्हीं ब्राह्मणों की महिमा है जिनमें ब्राह्मण बनने के गुण विराजमान हों, आज कल के अक्षर शत्रु ब्राह्मणों की नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों शब्दों की व्युत्पत्ति से आप को ठीक पता चल जायगा कि असली बात क्या है, [ब्रह्म वेद तदधीते इति ब्राह्मणः] अर्थात् ब्रह्म नाम वेद को जो पढ़े पढ़ावे उसका नाम ब्राह्मण है अथवा "ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मणः" जो ब्रह्मको यथार्थ रूप से जाने उसे ज्ञान की प्रधानता के कारण ब्राह्मण कहते हैं। इसी प्रकार (क्षतात्त्रायते इति क्षत्रियः) जो अनेक

आपत्तियों से प्रजा की रक्षा करे वह बल प्रधान होने से क्षत्रिय कहाता है (विशंति देश देशान्तरे व्यवसायार्थ येते वैश्याः) अर्थात् जो व्यवहार के लिये देश देशान्तर में गमनागमन करते रहें वे धन की प्रधानता से वश्य कहाते हैं एवं (शुचा शोकेन द्रवतीति शूद्रः) जो मनुष्यों के विविध क्लेशों को देख कर शोक से द्रवीभूत होवे उसे तप प्रधान होने से शूद्र कहते हैं। इस कथन से आपको पता लग गया होगा कि ये चारों नाम कर्तव्य परक हैं जाति परक नहीं, और यदि कहीं जाति परक आये भी हैं तो गौण रूप से आये हैं, जैसे (पंच वर्ष ब्राह्मण-मुपनयेत्) अर्थात् जन्म से पांचवें वर्ष में ब्राह्मण के बालक का यज्ञोपवीत संस्कार कर देना चाहिये, यह कथन ब्राह्मण बनने की सम्भावना से लिखा गया और देखिये महाराज मनु कहते हैं—

ब्राह्मणं दश वर्षन्तु शत वर्षन्तु भूमिपम्।
पिता पुत्रौ विजानीया द्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥

अ० २ श्लो० १३५

अर्थात् दश वर्ष के ब्राह्मण बालक को, सौ वर्ष का क्षत्रिय पिता के तुल्य समझे, इस प्रकार के कथन जहां भी आये हैं वे सब ब्राह्मण वर्ण को उत्तम मानकर और उससे उत्पन्न बालकों में भी उसी की सम्भावना से गौण रूपेण आए हैं, परन्तु चारों वर्णों का दारोमदार गुण कर्मों पर निर्भर है इस बात को कभी न भूलना चाहिये तभी तो महाराज मनु कहते हैं कि—

न तिष्ठति तु यः पूर्वा, नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्र वद् बहिष्कार्यः सर्व स्माद्द्विज कर्मणः ॥

अ० २

जो प्रातःकाल संध्या करने के लिये पूर्वाभिमुख नहीं बैठता और सायंकाल की संध्या करने के लिये पश्चिमाभिमुख नहीं बैठता उसे शूद्रों की न्याईं सब द्विज कर्मों से पृथक कर देना चाहिये। क्या आज कल के सभी ब्राह्मण दोनों काल संध्या तथा अग्निहोत्र की कभी अवहेलना नहीं करते? यदि करते हैं तो उन्हें द्विज कर्मों से पृथक किस ने किया, भगवान मनु तो यहां तक लिखते हैं—

योऽनधीत्य द्विजो वेद मन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्व माशु गच्छति सान्वयः ॥ अ० २

जो द्विज वेद विद्या से विमुख होकर अन्यान्य विद्याओं में श्रम करता है वह जीते जी अपने परिवार के साथ शूद्र भाव को प्राप्त हो जाता है आज कल वेद पढ़ना तो दूर रहा बहुत से ब्राह्मण तो वेदों के नाम भी नहीं जानते फिर भी सब के पूज्य इसी का नाम तो भूल है। महाराज मनु ने इन नाम मात्र के ब्राह्मणों को कैसी बढ़िया उपमा दी है—

यथा काष्ठ मयो हस्ती यथा चर्म मयो मृगः ।
यश्च विप्रो न धीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥

अ० २-१५२

अर्थात् जैसा काठ का हाथी और चमड़े का मृग तथा बिना पढ़ा ब्राह्मण यह तीनों नाम मात्र ही धारण करते हैं। क्या

भगवान् मनु भी ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं? नहीं २ जो यथार्थ बात है सोई बतलाते हैं और यही मैं कह रहा था। आपको विश्वास रखना चाहिये कि मैं समालोचक हूं निन्दक नहीं सत्य बात कहने में संकोच नहीं करना चाहिये देखिये पाराशर महाराज लिखते हैं—

गायत्री रहितो विप्रः शूद्रादप्य शुचिर्भवेत् ।
गायत्री ब्रह्म तत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ॥

अ० २-२४

अर्थात् गायत्री मन्त्र का जप न करने वाला ब्राह्मण शूद्र से भी अधिक अपवित्र है और गायत्री तथा वेद के अर्थों को जानने वाले ब्राह्मणों की महि-मंडल का मनुष्य समुदाय निरतर पूजा किया करता है । यदि जन्म से ही ब्राह्मण पदवी मिल जाती तो ऋषियों को ऐसा कथन करने की क्या आवश्यकता होती, देखिये—कैसा अच्छा कहा है—

ब्रह्मतत्वं न जानाति. ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ।
तेनैव स च पापेन विप्रः पशु रुदाहृतः ॥

जो ब्राह्मण ब्रह्म के तत्व को न जान कर केवल ब्रह्म सूत्र अर्थात् जनेऊ धारण मात्र से ही अभिमान की मूर्ति बन जाता है वह इसी अभिमान रूप पाप से पशु कहलाता है। जो ब्राह्मण होकर कर्तव्य कर्म से रहित है और अकर्तव्य कर्मों में निरन्तर कटिबद्ध रहता है उसे दान देना भी अयोग्य है यह बात धर्म शास्त्रों के अनेक स्थानों में लिखी हुई है, देखिये, व्यास महाराज क्या कहते हैं—

वेद पूर्ण मुखं विप्रं, सुभुक्त मपि भोजयेत् ।
न च मूर्ख निराहारं, षड्रात्र मुपवासिनम् ॥

अर्थात् वेद विद्या के ज्ञाता ब्राह्मण को पेट भरे होने पर भी भोजन करादें किन्तु मूर्ख ब्राह्मण चाहें छः दिन का भूखा भी क्यों न हो उसे भोजन न दे। ऋषि मुनियों के ऐसा कथन करने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि कहीं ब्राह्मण लोग अपने कर्तव्य को भूलकर वेद विद्या से मुख न फेरलें जैसा कि वर्तमान में देखा जा रहा है—

ऊषरे वपितं बीजं, भिन्न भाण्डेषु गोदुहम् ।
हुतं भस्मनि हव्यं च, मूर्खेदान मशाश्वतम् ॥

सा० स्म अ० १ ६२

कल्लर में बोया हुआ बीज, और फूटे पात्र में दुहा हुआ दूध, और राख में किया हुआ हवन, एवं मूर्ख ब्राह्मण को दिया हुआ दान, सब व्यर्थ चला जाता है अर्थात् इनका फल कुछ नहीं होता किन्तु धन और बीजादि नष्ट हो जाते हैं साथ ही ऐसा करने वालों को भी अयोग्य बना देते हैं। हारित स्मृति में लिखा है कि—

स्मृति हीनाय विप्राय, श्रुति हीने तथैव च ।
दानं भोजन मन्यच्च, दत्तं कुल विनाशनम् ॥

अ० १ २४

अर्थात् जो ब्राह्मण स्मृति, धर्म शास्त्र को श्रुति अर्थात् वेद को नहीं पढ़ा हो ऐसे ब्राह्मण को दान देना या भोजन कराना अथवा उसकी सेवा करना कुल का नाश कारक होता है।

परन्तु क्या आज कल के दानी लोग इन बातों का विचार करते हैं हैं ? करें भी कहां से ज्वकि वे शास्त्र रूपी नेत्रों से ही हीन हैं कहिये बड़े जी, अभी आप गुण कर्म के परिणाम रमणीय सिद्धान्त को समझे या नहीं।

वृद्ध—महात्मा जी, मुझे शास्त्रों की इन बातों का पता नहीं था तभी मैंने आपके ऊपर वृथा दोषारोपण किया था उसके लिये मुझे क्षमा करें। अब कृपया यह तो बताइये कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के कर्त्तव्य कर्म क्या क्या हैं।

साधु—बहुत अच्छा, सुनिये भगवान मनुजी ने अपनी स्मृति में इस प्रकार कहे हैं-

अध्यापन मध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव; ब्राह्मणानाम कल्पयत् ॥

अ० १ श्लो०—८८

अर्थात् वेदादि शास्त्रों का पठन पाठन, यज्ञ करना कराना दान देना और लेना यह छ. कर्म ब्राह्मणों के हैं। इन में प्रतिग्रह उत्तम कर्म नहीं है यदि ब्राह्मण से बचा जाय तो अच्छा है अथवा निर्वाह मात्र ले सकता है।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्या ध्ययन मेवच।
विषयेष्व प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥

अ० १—८९

अर्थात् न्याय से प्रजा की रक्षा, और पक्षपात छोड़ कर श्रेष्ठों का सत्कार, तथा दुष्टों का तिरस्कार करना, विद्या धर्म की प्रवृत्ति, और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थ समर्पित

करना, अग्निहोत्र करना, वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय करना, एवं जितेन्द्रिय रहकर सर्वदा शरीर और आत्मा को बलयुक्त रखना क्षत्रियों के कर्त्तव्य कर्म हैं।

पशूनां रक्षणं दानमिज्या ध्ययन मेवच।
वणिक्‌ पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषि मेवच॥

अ० १ श्लो० ६०

अर्थात् गौ आदि पशुओं का पालन, विद्या धर्म की वृद्धि के लिये सुपात्रों को दान देना, अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना वेद का स्वाध्याय करना तथा सब प्रकार व्यापारों का करना एक सैकड़े में चार, छः, आठ, बारह, सोलह अथवा बीस से अधिक व्याज न लेना किन्तु न्यायानुसार ही व्याज लेना इत्यादि वैश्यों के कर्त्तव्य कर्म हैं।

एक मेवतु शूद्रस्य प्रभुःकर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां, शुश्रूषा मनसूयया॥

अ० १-६१

अर्थात् शूद्र को योग्य है कि निन्दा, ईर्ष्या अभिमानादि दोषों को छोड़कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य इन तीनों वर्णों की यथावत् सेवा करना और उसी से अपना निर्वाह करना शूद्र का परम कर्त्तव्य है। इसी प्रकार भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने गीता के अठारवें अध्याय में अर्जुन को चारों वर्णों के स्वाभाविक गुण कर्म विशद रीति से समझाये हैं। जब तक इनके ऊपर विश्वास करके आर्य जनता अपना २ कर्त्तव्य निभाती रही तब तक तो वर्ण व्यवस्था का कार्य्य सुचारू रूप

से चलता रहा, परन्तु जब हिन्दू जनता ने अपने शास्त्रों को भुलादिया तो कर्त्तव्य कर्म भी भूलगये, इस में किसी का क्या दोष है यह तो हमाराही प्रचंड प्रमाद है। प्राचीन वर्ण व्यवस्था और आज कल की जाति पांति में आकाश पाताल का अन्तर है। यदि जन्म से ही ब्राह्मणादि वर्ण होते तो ऋषियों को इन कर्त्तव्य कर्मों के प्रतिपादन की क्या आवश्यकता होती शुक्र नीति में एक जगह लिखा है कि—

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र, क्षत्रियो वैश्य एवच।
न शूद्रो न चवैम्लच्छो, भेदिता गुण कर्मभिः॥

अ० १-३८

अर्थात् इस भारत वर्ष में जन्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अथवा म्लेच्छ नहीं होता, यह सब वर्ण भेद गुण कर्मों के ऊपर निर्भर है। महाभारत के शान्ति पर्व में भारद्वाज ने भृगु से प्रश्न किया है कि महाराज [ब्राह्मणः केन भवति] अर्थात् ब्राह्मण किस से बनता है। अब यदि जन्म से ही वर्ण विभाग होता तो यह प्रश्न करना ही अयुक्त था, भृगु ने इसके उत्तर में कहा—

सत्यं दानं क्षमाशीलं मानृशंस्यं त्रपा घृणा।
तपश्च दृश्यतेयत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ अ० १८६

अर्थात् जिस किसी पुरुष के अन्दर सत्य, दान, क्षमा, सदाचार, अक्रूरता, उचित लज्जा, दया और तप ये शुभ गुण विराजमान हों वही ब्राह्मण है तो क्या इन गुणों से युक्त शूद्र कुलारम्भ मनुष्य भी ब्राह्मण कहला सकता है? इस आशंका के उत्तर में भृगु जी ने कहा—

शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च ॥

अ०-१८६

अर्थात—जो व्यक्ति जन्म से शूद्र हो परन्तु उस के अन्दर ये गुण पाये जाते हों और जो व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण हो किन्तु उसके अन्दर ये लक्षण नहीं घटते हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं, किन्तु शूद्र कुलोत्पन्न पुरुष ब्राह्मण तथा ब्राह्मण कुलोत्पन्न पुरुष शूद्र हो जाता है। अब आप ही कहिये कि ऋषियों ने इस विषय में क्या कसर रक्खी है इस प्रकार के सम्वादों से धर्म शास्त्रों के कई कई अध्याय भरे पड़े हैं। मुझे इतना समय नहीं है जो मैं आपको अच्छी प्रकार सुना सकूं हां दिग्दर्शन मात्र कराना जाता हूं आप यह न समझ लेना कि बस, भारत की भूल का अन्त हो गया नहीं२ इस पापिन भूलने भारत वर्ष को पांचहज़ार वर्षोंसे अधिक समय से भरमाना आरम्भ किया है जैसी आशङ्काएं देश कालज्ञ वीर शिरोमणि अर्जुन ने श्री कृष्ण के सम्मुख गीता के प्रथम अध्याय में उपस्थित की थीं, वे सब सत्य हो के ही रहीं परन्तु भगवान कृष्ण ने उसकी एक भी न सुनी, सुनते भी कैसे जबकि वह भयानक समय ही उनको ऐसा करने के लिये विवश कर रहा था। इस सर्वान्तकारी महाभारत युद्ध के बाद जो कुछ परिणाम हुआ सो मेरे और आप के सम्मुख उपस्थित है महाभारत से पीछे अनेक महात्माओं ने आकर इस हिन्दू जाति के उत्थान के लिये भरसक प्रयत्न किया परन्तु इसकी मोह मयी प्रमाद निद्रा इतनी प्रबल है कि अभी तक भी सचेत न हो सकी इस घोर संग्राम के बाद आर्य्यावर्त्त की जो अवस्था हुई है उसे पराशर ऋषि ने संकेत मात्र कह दिया है—

द्विविधाः स्त्रियो भवन्ति ब्रह्म वादिन्यः सद्यो वध्वश्च,
तत्र ब्रह्म वादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनम् वेदाध्ययनम्
स्वगृहे भिक्षाचर्येति, सद्यो वधूना मुपस्थिते विवाहे
कथं चिदुपनयन मात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः ॥

अर्थात् दो प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं एक ब्रह्मवादिनी दूसरी सद्या वधू; इन दोनों में ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का उपनयन अग्निहोत्र वेदाध्ययन और अपने घरमें भिक्षाचर्य्या का विधान है एवं सद्या वधुओं का यौवन प्राप्त होने पर शीघ्र ही उपनयन मात्र करके विवाह कर देना चाहिये। और सुनिये यम स्मृति में लिखा है कि—

पुरा कल्पे तु नारीणां मौञ्जि मौञ्जि बन्धन मिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्री वाचनं तथा ॥

अर्थात् प्राचीन काल में स्त्री भी मूंज की मेखला पहिन कर ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण करती थीं और सावित्री अर्थात् गुरु मन्त्र का पाठ करती थीं। इतना ही नहीं किन्तु स्कन्ध पुराणान्तर्गत सूत संहिता में स्त्रियों के लिये लिखा है—

तथा गार्गी च मैत्रेयी, तत्र तीर्थे महत्तरे।
वेदतीर्थाभिधे स्नानं, कृत्वा पर्वणि केशव ॥

अर्थात् गार्गी और मैत्रेयी नाम की दोनों नारियों ने वेद रूपी महा तीर्थ में स्नान किया। अर्थात् वेद की शिक्षा से अपना जीवन सुधार कर कर्म गति को प्राप्त किया। महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि— [कन्या सती देव मर्क माजुहाव यशस्विनी]।

अर्थात् कुन्ती जब कन्या थी तो उस समय वह सूर्य के निमित्त यज्ञ किया करती थी, महर्षि पतञ्जलिने महा भाष्य में लिखा है कि। [ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदो ऽध्येयो ज्ञेयश्च] अर्थात् ब्राह्मण के क्या परम कर्त्तव्य हैं कि वह शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष इन छहों अङ्गों सहित वेद को पढ़े और उनके ज्ञान से लाभ उठावे। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी लिखा है कि–[अष्ट वर्षं ब्राह्मण मुपनयीत, तमध्यापयीत] अर्थात् आठवें वर्ष में ब्राह्मण के बालक का उपनयन संस्कार करे और वेद पढ़ावे, इन दोनों स्थानों पर ब्राह्मण शब्द सब ब्राह्मणों का समान भाव से वाचक है अतएव ब्राह्मण जाति के पुरुषों की तरह उनकी स्त्रियों का पठन पाठन भी भली भांति सिद्ध होता है। इतना ही नहीं किन्तु मान्यवर योगिराज महाराज पतञ्जलिने महा भाष्य में बहुत से ऐसे प्रयोग दिये हैं जिन से स्त्रियों का वेद पढ़ना जाना जाता है जैसे (शात पथि की) अर्थात् शतपथ नाम के ग्रन्थ को पढ़ने वाली स्त्री (काश कृत्स्ना) अर्थात् काश कृत्स्न आचार्य के व्याकरण को पढ़ने वाली स्त्री (उपाध्याया) अर्थात् अध्यापिका का कार्य करने वाली स्त्री (आचार्याणी) आचार्या अर्थात् प्रिंसिपला बन कर कार्य करने वाली विदुषी। जो लोग स्त्रियों के लिये यज्ञाधिकार का निषेध करते हैं वेनो नितान्त ही अनभिज्ञ हैं क्यों कि प्राचीन काल में स्त्री समाज भी नियम पूर्वक अग्नि होत्रादि यज्ञों को मन्त्रवत् करता रहा है, भागवत पुराण में कश्यप मुनि विदेश से लौटने पर अपनी धर्म पत्नी अदिति से कहते हैं।

अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति।
त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोसिते मायि कर्हिचित्॥

स्कं० ८ अ० १६

कवित्त-विप्र को सुहात वेद विद्या में प्रवीण होय,
जीवन सुधार तप तेज भरता रहै।
क्षत्री को सुहात वीरतापै तन वारे रहै,
दीन दुखियों को दया दान करता रहै।
वैश्य को सुहात धन धान्य से धरा को भरै,
सामाजिक उन्नति का ध्यान धरता रहै।
शूद्र को सुहात बन सेवक सुधार रहै,
अधमा अशुद्धता का भार हरता रहै।

इतना कह कर महात्मा जी मौन हो गये, और वृद्ध के किसी और प्रश्न की प्रतीक्षा करने लगे।

नवम तरंग:

स्त्री शिक्षा

वृद्ध—महात्मा जी, उस आर्य समाजी पंडित ने कहा था कि जो ऐसा कहते हैं कि वेद को पढ़ने का अधिकार सिवाय ब्राह्मण के और किसी को नहीं है सो यह उन की भारी भूल है क्योंकि वेदों के पढ़ने का अधिकार सब को है जिस में पढ़ने की योग्यता हो वही पढ़ सकता है किसी को रुकावट नहीं और इस से पहिले मैंने एक दिन एक सनातनी पंडित से सुना था कि स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। अब इन दोनों में से किस की बात ठीक मानी जाय कृपया इस बात को समझा दीजिये।

साधु—बड़े जी, आप न तो इन दोनों की बात मानिये और न मेरी ही बात मानिये किन्तु जैसा शास्त्र का कथन हो वैसा ही मानिये क्योंकि भगवान् कृष्ण ने गीता के सोलहवें अध्याय में अर्जुन के प्रति कहा है—

तस्माच्छास्त्र प्रमाणन्ते, कार्या कार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं, कर्म कर्त्तु मिहार्हसि॥

हे अर्जुन कर्तव्य और अकर्तव्य क्या निश्चय करने के लिये तुम को शास्त्र की ही शरण लेना चाहिये, शास्त्रीय विधान को जानकर ही संसार में शुभ कर्म करो। अब देखिये स्त्रियों के लिये ऋषिवर हारित ने लिखा है—

अच्छा, मेरे कथन से आप को यह तो पता लग ही गया होगा कि उत्तम सदाचार से मनुष्य उत्कृष्ट होता है और दुराचार से भ्रष्ट होता है इसमें जन्म जाति की कुछ भी दाल नहीं गलती क्योंकि शास्त्रों में साफ़ लिखा कि—

विश्वामित्रो वशिष्ठश्च मतंगो नारदादयः।
तपा विशेषैः सम्प्राप्ता उत्तमत्वं न जातितः॥

ऋषि विश्वामित्र, वशिष्ठ, मतंग और नारदादि अनेक पुरुष तपस्या से ही उत्तम कहलाए किन्तु जन्म से नहीं, यह जन्म की महिमा तो पश्चात् चल पड़ी है हमारे ऋषिमुनियों का जो सर्व श्रेष्ठ सिद्धान्त था उसे आपस्तम्ब ने अपने सूत्रों में इस प्रकार कथन किया है (धर्मचर्य्यया जघन्यो-वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जाति परिवृत्तौ-अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यम्वर्णं माद्यते जाति परिवृत्तौ

अ० २ पटल ५ सू० १०–११)

अर्थात् धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त हो जाता है और वह उसी वर्ण में गिना जाता है इसी प्रकार अधर्माचरण से उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे वर्ण को प्राप्त हो जाता है और उसी वर्ण में उसकी गणना होती है इस कथन से प्रतीत होता है कि हमारे पूर्वज ऋषि लोग गुण कर्मानुसार ही वर्ण व्यवस्था को मानते थे किन्तु पीछे से यह उत्तम गति देने वाली वर्ण व्यवस्था विपरीत हो गई फिर क्या था अनपढ़ निरक्षर मनुष्य भी अपने आपको श्रोत्रिय

पाठक, उपाध्याय, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि बड़ी २ पदवियों से विभूषित करने लगे। इस महान अंधकार के समय में केवल नामधारी ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग अपने को छोड़ कर अन्य सब को शूद्रही कहनेलगे, बल्कि वर्ण व्यवस्था के अनुसार तो प्रत्येक मनुष्य चारों वर्ण हो सकता है, जैसे इस शरीर में सिर ब्राह्मण भुजा क्षत्रिय, मध्य भाग वैश्य और पैर शूद्र है इसी प्रकार की ईश्वर सृष्टि है वेद ने (ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्) इस मन्त्र में विराट भगवान के शरीर को इन्हीं भागों में विभक्त किया है उदाहरण के लिये एक ज्ञानी मनुष्य को ही ले लीजिये तभी वह ईश्वरीय ज्ञान में निमग्न रहता है लोगों को पढ़ाता सिखाता अथवा उपदेश करता रहता है जोकि ब्राह्मण का कर्त्तव्य है और कभी किसी निर्बल व्यक्ति की आघात से रक्षा करना है जो क्षत्रिय का कर्त्तव्य है और कभी अपने लिये या दूसरों के लिये धनादि पदार्थों को संचित करना है जो कि वैश्या का धर्म है, इसी प्रकार कभी दीन दुखियों की अथवा अपने गुरु आचार्य्य या माता पिता की सेवा करने लगता है जो कि शूद्र का काम है, इस प्रकार एक ही मनुष्य का चारों कामों को कर सकता है अतएव चारों वर्ण में भी गिना जा सकता है, वैदिक शिक्षा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य का चारों वर्ण होना चाहिये तभी देश तथा जाति का भला हो सकता है।

जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवा नृतेन च ।
जिताश्चौरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा कलौ ॥

अ० १—३०

अर्थात् इस कलियुग में अधर्म ने धर्म को जीत लिया है और चोरों ने राजाओं को जीत लिया है एवं असत्य ने सत्य को को पछाड़ दिया है तथा स्त्रियों ने पुरुषों को वश में कर लिया है। इस भयङ्कर युद्ध के बाद भव्य विभूतिभूषित भारत गारत ही होके रहा, अवगुण समूह ने इसे नितान्त आर्त कर डाला. इसकी परोपकार वृत्ति पर स्वार्थ परता ने अपना अधिकार जमा लिया, और इसकी धीरजता को सुस्ती ने न मालूम कहां भगा दिया, सावधानता को वहमीपने ने एक दम हरा दियो, इसकी सरलता को मूर्खता ने अच्छी प्रकार सुला दिया, भारत की न्याय निपुणता को निर्दयता ने समूल उड़ा दिया, प्रिय स्वाधीनता को गुलामी की ज़ञ्जीरों ने जकड़ लिया, इसकी वीतरागता को अकर्मण्यताने घेर लिया, क्षमाशीलता को भीरुता ने भगादिया, इसकी चतुराई को कुटिलताने नष्टकर दियानम्रता को चापलूसी ने भ्रष्ट कर दिया, कहां तक कहें इस के सुखसाधन के स्थान में इन दुर्गुणों ने कष्ट का साम्राज्य करा दिया, महाभारत से पूर्व यह आर्य्य जाति अकुतोऽभया हो कर उन्नति के शिखर पर विराजमान थी, क्यों कि इसके ज्ञानी गुरु ब्राह्मण इसे गंगा में स्नान कराया करते थे, और महा प्रतापी क्षत्रिय अनेक संकटों से इस को रक्षा किया करते थे, एवं धन पति परमोदार वैश्य इसे धन धान्य से भरा करते थे, इसी प्रकार उत्सकी शूद्र इसकी सेवा से अनेक दुःखों को हरा करते थे। हे विधे! क्या फिर भी वह समय हमको देखने को मिलेगा (साधु ने इतना कह कर

नीचे को मुंह कर के मौन धारण कर लिया आधीरात का समय हो चुका है तारापति इन्द्र देव भी हम लोगों के सिर पर आकर रुके हुवे से मालूम होते हैं मानों इस साधु की हृदय विदारक बातों को सुन कर इस में और आगे चलने की शक्ति नहीं रही है मेले का भी अब वह गगन स्पर्शी शब्द नहीं रहा सब यात्री समुदाय गंगा की पवित्र रेती पर बिस्तर बिछाए सो रहा है। कहीं २ बहुतसी स्त्रियां तो ढोलक बजा कर भक्ति रस से भरे हुए भजन गा रही हैं और इस रात को असाधारण रात समझ कर नींद को पास नहीं फटकने देती, सेवा समिति वाले नवयुक तथा पुलिसमैन इधर उधर रखवाली करते घूम रहे हैं गंगा की धारा भी इस संन्यासी मधुर एवं परिणाम रमणीय उपदेश को सुन कर मंद गति से बह रही है। वृद्ध से अधिक चुप न रहा गया और साधू से कहने लगा)।

वृद्ध-महात्मा जी, आप चुप क्यों हो गये क्या आपकी बातों का अन्त हो गया ?

साधु-महाशय जी, आपके सुनने तथा मेरे कहने का अन्त हो सकता है परन्तु भारतवर्ष की इस दुःख भरी कहानी का अन्त नहीं हो सकता मुझे एक सवैया छन्द याद आगया था इसे ही सोचने लगा था।

* सवैया *

कौन कहै अरु कौन सुनै अब, भारत में जिमि भूल भरी है ।
दुःख दरिद्र हुताशन में, सुख सम्पति हाय ! समूल जरी है ॥
भाग्य विधान फिरा जब से, तब से महिमा प्रतिकूल परी है ।
केवल भारत की प्रभुता, अब सागर के उस कूल धरी है ॥

हे सती ! मेरे परदेश चले जाने पर आपने नियत समय में यज्ञाग्नि में आहुति डालने की तो कोई भूल नहीं की ? इस पर अदिति ने उत्तर दिया कि महाराज मैं नियम पूर्वक अग्निहोत्र करती रही हूं। अब आप वाल्मीकि रामायण की कथा सुनिये जिस समय मर्यादा पुरुषोत्तम राम पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके चौदह वर्षों के लिये बन को जाने लगे तो अपनी माता के दर्शन के लिये महलों में गये, वहां का वर्णन कविकुल गुरु वाल्मीकि जी ने इस प्रकार किया है—

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा, मत्रवत् कृतमंगला।

अर्थात् रेशमी वस्त्रों को धारण करके प्रसन्नवदना नित्य व्रत परायणा कौशल्या देवी अनेक मांगलिक वस्तुओं को अपने निकट रख कर मंत्रोच्चारण पूर्वक अग्नि होत्र कर रही थीं। इसके अतिरिक्त जब अखण्ड बलराशि, अतुल साहसी, महावीर हनुमान आराध्यचरण जानकी का पता लगाने के लिये लंका में गये तो सायंकाल के समय एक नदी के किनारे खड़े हो कर सोचने लगे कि—

संध्या काल मनाश्यामा ध्रुव मेष्यति जानकी।
नदीश्च मां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी।

अर्थात् परम सुन्दरी, धर्म धुरंधरी, जनक नन्दिनी। सीता यदि जीवित होगी तो इस सायंकाल में संध्या करने की शुभ इच्छा से इस शुभ जल वाली नदी के किनारे अवश्य ही आयगी। सब प्रमाणों के होते हुए स्त्रियों को वेद पढ़ने तथा यज्ञ करने का निषेध करना कितनी मूर्खता की बात है। वैदिक काल में

तथा उपनिषद् काल और रामायण काल में स्त्रियां स्वतंत्रता पूर्वक वेदादि शास्त्रों को पढ़ती पढ़ाती रही हैं इस विषय में किसी को आशंका हो तो वेदों की मंत्र संहिताओं में आई हुई ऋषियों की नामावली में अनेक स्त्रियों के नाम देख सकते हैं उस में गोधा घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, निषत् अदिति शची, पौलोमी आदि सैंकड़ों ऋषिकाओं के नाम आते हैं। यदि आज कल के अक्षर शत्रु तथा अपने आपको ही वेदाधिकार का वृथा अभिमान करने वालों से पूछा जाय कि कहिये महाशय इन श्रद्धास्पद ऋषियों की बात ठीक मानी जाय या आपकी ? तो इसका उत्तर उनके पास सिवाय मौनके और कुछ नहीं होसकता। होता भी कहां से जबकि वेद रूपी सूर्य्य इनके अज्ञानान्धकार को अपने पास नहीं फटकने देता, वेद भगवान तो सबके लिये अपना विशाल द्वार खुला रखते हैं जिसकी इच्छा हो उन्हें पढ़ कर लाभ उठा सकता है फिर आर्य स्त्रियों का तो कहना ही क्या है ? तब ही तो बाबू मैथिली शरण जी ने कहा है—

सोचो, नरों से नारियाँ किस बात में हैं कम हुईं।
मध्यस्थ वे शास्त्रार्थ में हैं भारती के सम हुईं॥
हैं धन्य थेरी तुल्यगाथाकर्त्रियां वे सर्वथा।
कवि हो चुकी हैं विज्जका विजया मधुर वाणीयथा॥

जब भगवान शंकराचार्य्य और विद्यानिधि मंडन मिश्र का शास्त्रार्थ हुआ था तो इन दोनों विद्वानों की बात का निर्णय करने वाली भारती देवी मध्यस्थ बनाई गई थी, उन्होंने स्वयं भी शंकराचार्य्य से शास्त्रार्थ किया था। इस के अतिरिक्त थेरी गाथा नाम की पुस्तक पाली भाषा में लिखी गई है उसमें

सत्तर अस्सी बौद्ध स्त्रियों की बड़ी ही मार्मिक तथा धार्मिक कविताएं मौजूद हैं। कविसमाज का यह निश्चय है। कि कविता कानन केशरी दण्डी कवि के बाद विज्जका और कवि कुल-कमल--दिवाकर कालिदास के बाद विजया नाम की स्त्री ही कवित्त्व शक्ति में भरपूर हो चुकी हैं और मधुर वाणी के लिये तो यहाँ तक प्रसिद्ध है कि यह विदुषी आधी घड़ी में संस्कृत के सौ बढ़िया श्लोक बना देती थी इस के मुखारविंद से संस्कृत भाषा की अविरल धारा बहा करती थी। और भी सैकड़ों क्या हज़ारों ऐसी विदुषी स्त्रियां हो चुकी हैं जिन्हों ने शास्त्र जन्य ज्ञान भानुसे अपने मानसिक कमल को विकासित कियाहै। स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी की कृपासे वर्त्तमानकाल में भी सैकड़ों ऐसी देवियां कन्या पाठशाला तथा कन्या महा विद्यालय आदि संस्थाओं से पढ़कर निकली हैं जिनकी अनेक शास्त्रों में अव्याहत गति मौजूद है, यह देखकर सनातनधर्म की तरफ से भी अनेक कन्या पाठशालाएं खुल चुकी हैं। मानों अब इस शुभ कार्य के करने से अपनी पिछली भूल पर पड़दा डाल रहे हैं, यही तो चाहिए था ऐसा करने से ही तो भारत का कल्याण होगा। महाराज मनु ने लिखा है-

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रै तास्तु न पूज्यन्ते, सर्वा तत्राफला क्रिया॥

अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार होता है उस कुल में सब देवता रमण करते हैं और जहां इन्हें अविद्या के गहरे गढ़े में गिराया जाता है वहां सब काम ख़राब होते हैं। अच्छा, महाशय जी अब और कुछ पूछिये।
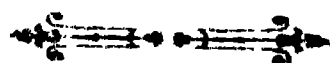
दशम तरंग

शूद्र और वेद का अधिकार

साधु–बड़े जी, यह स्त्रीशिक्षा के विषय में मैंने आपको दिग्दर्शन मात्र करा दियाहै, अब यह विचार बाकी है कि वेदभगवान अपने विषय में शूद्र वर्ण का अधिकार बतलाते हैं या नहीं तथा अन्या-न्य ऋषि मुनियों की इस विषय में क्या सम्मति है इत्यादि, जो लोग क्षत्रिय और वैश्य को वेद पढ़ने का निषेध करते हैं वे तो मानो भगवान भास्कर के होते हुए निविड़ अन्धकार मयी अमावस्या की रात्रि की सम्भावना करते हैं क्योंकि सब धर्म शास्त्रों में तीन वर्णों को द्विजाति शब्द से पुकारा गया है और द्विजाति को वेद पढ़ने का पूर्ण अधिकार है। हां, शूद्र वर्ण के विषय में कुछ मत भेद हो सकता है। इस मतभेद में हमें वेदकी ही शरण लेनी चाहिये क्योंकि वेद को सब आचार्यों ने स्वतः प्रमाण माना है। यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में लिखा है—

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्या ꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय ॥

अर्थात् जैसे मैंने (जनेभ्यः) महिमंडल के समस्त मानवों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीं) संसार और मोक्ष सुख के देने हारी (वाचं) चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) कथन करता हूं वैसे ही परस्पर सब मनुष्यों को करना चाहिये। यहां पर कोई यों न कहने लगे कि (जनेभ्यः) इस पद से हम द्विजाति मात्र का ही ग्रहण करेंगे अन्य का नहीं, इस लिये इस आशङ्का

का उत्तर इसी वेद मंत्र से दिया जाता है और किसी मंत्र के पढ़ने की आवश्यकता नहीं। इस वास्ते आगे बतलाते हैं (ब्रह्म-राजन्याभ्याम्) ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिये (अर्य्याय) वैश्य के लिये (शूद्राय) शूद्र के लिये और (स्वाय) अपने सेवक तथा स्त्रियों के लिये (अरणाय) शूद्र से भी अति शूद्र के लिये मेरी यह अमृत वाणी है। इस मंत्र का भाव यह है कि सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुनाकर विज्ञान को बढ़ाते रहें तथा अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग कर के सब दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त होते रहें, किसी को निर्दयी और निर्मम बनके घृणा के गहरे गढ़े में न गिरावें किन्तु एक पिता के पुत्रों की तरह जीवन व्यतीत करें। क्या परम पिता परमात्मा अपने प्यारे पुत्र शूद्रों का भला करनाही नहीं चाहता? क्या वह इतना पक्षपाती है कि शूद्रों के लिये वेदों के पढ़ने का निषेध और द्विजों के लिये विधि कर्त्ता? यदि ईश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के लिये वेदों के पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक्य और श्रोत्रादि इन्द्रिय द्विजों के समान क्यों रखता। न मालूम सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान परमात्मा में इतनी भूल और इतना आलस्य कहां से आ गया जो इन लोगों के लिये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य अन्नादि पदार्थ पृथक् न बनाए। इन सब बातों से तो यही मालूम होता है कि परमात्मा का तो ऐसा अभिप्राय नहीं है किन्तु यह सब गोलमाल धर्म के ठेकेदारों का है क्योंकि शूद्र कोई पृथक् वर्ण नहीं है किन्तु यह भी विशाल आर्य्य धर्म का ही एक आवश्यक अङ्ग है। फिर क्या कारण है स्मृतियों में कई स्थानों पर शूद्र को यज्ञ करने तथा वेद पढ़ने का निषेध पाया जाता है? इसका उत्तर यह है कि धर्मशास्त्रों में किसी जाति

विशेष को शूद्र नहीं कहा है किन्तु व्यक्ति विशेष को कहा है। जिस किसी व्यक्ति में अधर्माचरण आदि दुर्गुण हों वह वेद से लाभ नहीं उठा सकता इसी लिये निषेध है। देखिये, वेदों में कहीं भी शूद्र शब्द निकृष्ट अर्थ में नहीं आया किन्तु धर्म शास्त्रों में वही शब्द नीचता का द्योतक हो गया। शब्द शास्त्र में इस प्रकार हेर फेर हुआ हो करते हैं जैसे वेदों में 'दास' शब्द का प्रयोग नीच के लिये होता था किन्तु बाद में यह शब्द उच्चता को प्राप्त हो गया। अब वैश्य लोग भी अपने आपको दास शब्द से सम्बन्धित करनेलगे। अनेक भगवद् भक्त अपने नामके साथ इसे जोड़कर गौरवान्वित होकर चलेगये जैसे तुलसीदास, कबीर दास, दादूदास, रैदास, नानकदास, पलटूदास, रामदास, सूरदास, केशवदास, आदि। अब यह शब्द सेवक के भाव को प्रकट करने वाला हो गया और देखिये वेदों में 'असुर' शब्द ईश्वर, शूरवीर, सूर्य्य, मेघ और देव आदि अर्थों में विद्यमान था परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर यावत् संस्कृत ग्रन्थों में इसका प्रयोग केवल दुष्ट अर्थ में ही रह गया है इसी प्रकार उत्तम अर्थ रखने वा शूद्र शब्द भी ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा धर्म शास्त्रों में निकृष्ट वाचक हो गया है। वेदों के विचार से यह विस्पष्ट है कि वेदों में जिसको दस्यु और दास कहते हैं उसी को मनु आदि धर्मशास्त्रों में शूद्र कहने लगे तभी से नामकरण संस्कार में शूद्र के साथ ही दास शब्द लगाया गया है। अब आप वेदों को छोड़कर ऋषि मुनियों के ग्रंथों की ओर ध्यान दीजिये देखिये महाभारत में लिखा है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च कृतलक्षणाः।
कृते युगे समावन स्वकर्मनिरताः प्रजाः॥

एक देव समायुक्ता एक मन्त्र-विधिक्रि याः।
पृथक् धर्मास्त्वेक-वेदा धर्ममेक मनुव्रताः ॥

महा० वन पर्व अ० १४६

अर्थात् सतयुग में ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लोग अपने २ कर्त्तव्य में तत्पर रहते थे वे सब एक ही देवता की पूजा करते थे उनकी मंत्र विधि और क्रियाएं सब समान ही थीं वे सभी वेदों के मानने वाले थे कर्त्तव्य भिन्न २ होते हुए भी सब एक ही धर्म के मार्ग से चलते थे। महाभारत के इस कथन से भी वैदिक काल में शूद्रों के वेदाध्ययन की स्पष्ट सूचना मिलती है। पूर्व मीमांसा शास्त्र में लिखा है कि–

(फलार्थत्वात् कर्मणः शास्त्रं सर्वाधिकारं स्यात्

अ० ६ पाद १)

इस सूत्र में कहा है कि सब शास्त्रोक्त कर्म सुख रूप फल की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं और उस सुख की सभी इच्छा करते हैं। अतः वेदादि शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को है। इतना ही नहीं किन्तु पारस्कर गृह्य सूत्रों में तो यहां तक लिखा है कि–

(शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम्, काण्ड २ प्र० ६०)

अर्थात् सदाचारी शूद्र कुलोत्पन्न पुरुषों का भी उपनयन संस्कार करना चाहिये। इस उपनयन संस्कार का तात्पर्य्य ही वेद पढ़ने में है फिर कैसे मानें कि शूद्र भगवान वेद के दर्शन नहीं कर सकता। अब वह शूद्र कौन है जिसको वेदादि शास्त्रों के अध्ययन से वञ्चित रक्खा गयाहै? सो भी सुनिये, महाभारत

में लिखा है कि ब्राह्मण ही कर्म भ्रष्ट होकर शूद्र वर्ण को प्राप्त हो गये हैं यथा-

हिंसाऽनृतप्रिया लुब्धाः सर्व कर्मोऽप जीविनः ।
कृष्णाः शौच परिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥

शां० प० अ० १८८

अर्थात् जो ब्राह्मण हिंसा और असत्यप्रिय लोभी एवं सब तरह के कर्म करके निर्वाह करने वाले तामसी और अपवित्र थे, वे ही शूद्र भाव को प्राप्त हो गये । इस प्रकार के तमोगुणी हिंसक असत्यवादी पुरुषों को वास्तव में वेद पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता किन्तु उलटे वेद निन्दक हो जाते हैं इसी लिये शास्त्रकारों ने ऐसे ही शूद्रों को वेद पढ़ाने का निषेध किया है न कि शूद्र कुलोत्पन्न मात्र के लिये निषेध है । क्योंकि महाभारत के शान्तिपर्व में महर्षि व्यास देव ने अपने प्रिय शिष्यों को जो उपदेश किया है वह इस विषय में बार २ स्मरण करने योग्य है । सुनिये-

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वोभद्राणि पश्यतु ।
श्रावयेच्चतुरोवर्णान्, कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥
वेदस्याध्ययनं हीदं, तच्च पुण्यं महत्स्मृतम् ॥

हे शिष्यो ! क्योंकि यह ठीक बात है कि सम्पूर्ण मनुष्य कष्टों से दूर रहें और कल्याण को प्राप्त हों इस लिये तुम में से प्रत्येक को चाहिये कि ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्य्यंत चारों वर्णों को वेदोपदेश सुनावें । क्योंकि वेद का पढ़ना पढ़ाना बड़ा भारी पुण्य कहा गया है, इत्यादि कथनों से प्रतीत होता है कि प्राचीन ऋषि मुनियों का उदार आशय आजकल के धर्म ध्वजियों जैसा

नहीं था। वे तो प्राणी मात्र का कल्याण चाहते थे। निषेध परम्परा ने तो पीछे से आकर जोर पालिया है। वैदिककाल में शूद्र कुलोत्पन्न होने से ही किसी को वेद के ज्ञान से वञ्चित नहीं किया जाता था इस बात के लिये अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। देखिये, ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका दो और अध्याय तीन में कवषऐलूष, का चरित्र दिया है जो शूद्रा पुत्र होते हुए भी पीछे में ऋषिपदवी को प्राप्त हो गया। यह कवषऐलूष ऋग्वेद के दशम मंडल अनुवाक तीसरे और सूक्त तीस तथा चौंतीस का ऋषि है। और ऋषि शब्द का अर्थ निरुक्त में इस प्रकार किया है (ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः) अर्थात् ध्यान द्वारा मंत्र के मुख्य तात्पर्य को विचारने वाले, ऋषि कहलाते हैं। यदि शूद्र को वेद पढ़ने का निषेध था तो यह ऋषि कैसे बना? ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ का बनाने वाला महीदास ऐतरेय हुआ है, जो इतरा नामक दासी का पुत्र था, इस के नाम के अन्त में दास शब्द से भी इसका शूद्र कुलोत्पन्न होना साफ सूचित होता है। और ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के व्याख्यान रूप हैं, जब कि ऋग्वेद का प्रथम व्याख्याकार ही दासी पुत्र था तो यह कहना कि शूद्र वेद नहीं पढ़ सकता, कहां तक समुचित हो सकता है? छांदोग्य उपनिषद् में सत्यकाम जाबाल की कथा लिखी है, सो इस प्रकार है कि सत्यकाम ने अपनी माता जबाला से पूछा कि हे माता! मैं ब्रह्मचारी बनने के लिये अन्यत्र जाना चाहता हूं कृपया मुझे मेरा गोत्र बता दीजिये? माता जबाला ने उत्तर दिया कि हे पुत्र! मुझे तुम्हारे गोत्र का पता नहीं क्योंकि मैं यौवन अवस्था में इधर उधर परिचारिणी अर्थात् सेवकिनी के रूप में विचरा करती थी और उसी अवस्था में मैंने तुम्हें प्राप्त किया था अतएव मैं तुम्हारे गोत्र

को नहीं जानती परन्तु मेरा नाम जबाला और तुम्हारा नाम सत्यकाम है इस लिये तुम आचार्य्य के पास जाकर अपना नाम सत्यकाम जाबाल ही बता देना। फिर वह बालक हारिद्रुमत गौतम के निकट जाकर बोला कि भगवन्! मैं आप की सेवा में ब्रह्मचर्य्य धारण करने के लिये आया हूं गौतम ने कहा कि हे सौम्य! तुम्हारा गोत्र क्या है? बालक ने कहा कि महाराज! मुझे अपने गोत्र का पता नहीं, क्योंकि मेरी माता जबाला यौवन काल में इधर उधर विचरा करती थी और उसी अवस्था में मैंने जन्म पाया है। मेरा नाम सत्यकाम तथा मेरी माता का नाम जबाला है अतएव मैं सत्यकाम जाबाल हूं। इस बालक के मुख से सत्य वचन सुनकर गौतम बोले कि हे सौम्य! समिधा ले आओ, मैं तुम्हारा उपनयन संस्कार करूंगा क्योंकि तुम सत्य से पृथक नहीं हुए हो मैं तुम्हें ब्राह्मण समझता हूं। अब्राह्मण पुरुष कभी ऐसा प्रकाश नहीं कर सकता। यह कह कर गौतम ने उसे ब्रह्मचर्य्य धारण कराकर वेद पढ़ाया। इस से विस्पष्ट प्रतीत होता है कि जबाला एक प्रकार की वाराङ्गना थी क्योंकि 'परिचारिणी' और 'बह्वहं चरन्ती' ये दोनों पद हमारे इस विश्वास के साक्षी हैं यदि इसका कोई विवाहित पति होता तो उसके नाम ग्राम आदि का पता अवश्य देती। गौतम ऋषि ने बालक के सत्य भाषणादि से प्रसन्न होकर उसे ब्राह्मण समझा, इससे मालूम होता है कि सत्य गुण युक्त मनुष्य किसी घर में, किसी कुल में और किसी देश में भी उत्पन्न क्यों न हो, वह ब्राह्मण ही होता है।

वृद्ध—महात्मा जी क्षमा कीजिये! मैं आपको बीच में ही रोककर एक बात पूछना चाहता हूं। मैंने एक दिन एक पंडित

ने सुना था कि श्री रामचन्द्र जी ने किसी शूद्रको तपस्या करता देखकर उसका शिर काट दिया था, क्या यह बात सत्य है ?

साधु—जी हां, रामायण के उत्तर काण्ड में यह कथा लिखी है लीजिये पहिले मैं आपको वह श्लोक ही सुनाये देता हूं और फिर अपना विचार कहूंगा। अपने पिता के जीतेजी एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया था इस लिये उस ब्राह्मण ने राम से जाकर शिकायत की थी और कहा कि आप जैसे प्रतापी राजा के होते हुए यह अनर्थ क्यों हुआ ? रामचन्द्र जी ने इसका पता लगाया मालूम हुआ कि एक शूद्र अधोमुख होकर घोर तपस्या कर रहा है। राम ने निकट जाकर कहा कि तू कौन है ? उसने उत्तर दिया—

शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि, तप उग्रे समाश्रितः।
देवत्वप्रार्थये राम। सशरीरो महायशः॥
न मिथ्याहं वदेराम, देवलोकजिगीषया।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ, शम्बूको नाम नामतः॥

वा० उ० का०

हे राम ! मैं शूद्रा स्त्री से उत्पन्न हुआ हूं। मेरी इच्छा सशरीर देवत्व प्राप्त करने की है इस लिये यह कठिन तपस्या कर रहा हूं। हे महा प्रतापी राम ! मैं आप के सन्मुख मिथ्या नहीं कह सकता मुझे आप शम्बूक नाम का शूद्र समझें। तब—

भाषतस्तस्य शूद्रस्य, खड्गं सुरुचिरं प्रभम्।
निष्कृष्य कोषाद्विमलं, शिरश्चिच्छेद राघवः॥

इस की सत्यता पर राम को बड़ा क्रोध आया, झट अपनी म्यान से चमकीली तलवार निकाल कर उसका शिर काट दिया

स्यात् इस कथन के पूछने से आपका तात्पर्य्य यह होगा कि शूद्र को तपस्या करने का सर्वथा निषेध है फिर वेदों का पढ़ना तो दूर रहा। अब इसका उत्तर सुनिये, यह मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के ऊपर किसी पंडितम्मन्य ने वृथा कलंक लगाया है और बाल्मीकि जी की कविता का नाम लेकर इस कलंक कालिमा को छिपाना चाहा है। प्रथम तो यह बात है कि रामायण का उत्तरकाण्ड बाल्मीकि जी का बनाया हो नहीं है इसकी रचना बाद में हुई है इस प्रकार के हेर फेर ग्रन्थों में प्राय: होते ही रहते हैं। तभी तो श्री माध्वाचार्य्य ने महाभारत तात्पर्य्य निर्णय, नामक ग्रन्थ में एक जगह लिखा है कि-

क्वचिद्ग्रन्थान् प्रक्षिपन्ति क्वचिदन्तरितानपि ।
कुर्य्युः क्वचिच्च व्यत्यासम्प्रमादात्क्वचिदन्यथा ॥

अ०—२

अर्थात प्राचीन ग्रन्थों में कई स्थानों पर प्रक्षेप किए गये हैं कहीं कुछ भाग निकाल दिये हैं और कहीं कुछ हेर फेर से रच दिए गये हैं, यह सब कुछ कहीं तो प्रमाद वश और कहीं जान बूझ कर किया गया है 'जिस से प्रक्षेप करने वालों का स्वार्थ सिद्ध हो सके। स्यात् आपको मालूम न हो कि व्यास जी ने महाभारत के दशहज़ार श्लोक बनाए थे परन्तु आज महाभारत के श्लोक एक लाख से भी कहीं अधिक हैं। ठीक इसी प्रकार बाल्मीकीय रामायण में भी कई स्थानों में प्रक्षेप हो चुके हैं। दूसरी बात यह है कि इस कथा का इस ही रामायण के वर्णन से विरोध दिखाई देता है, क्योंकि स्वयं बाल्मीकि जी महाराज रामायण की फल श्रुति में कहते हैं—

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात् स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् । वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयात् । जनश्च शूद्रोऽपि महत्व मीयात् ॥

बाल्मीकीयै रामायण के प्रथमाध्याय का यह अन्तिम श्लोक है, ऋषिवर बाल्मीकि जी कहते हैं कि इस रामायण के पढ़ने से ब्राह्मण सुवक्ता ऋषि होगा, क्षत्रिय भूपति होगा, वैश्य व्यापार से अच्छा लाभ प्राप्त करेगा और शूद्र महान् बन जायगा । यहां रामायण के पढ़ने में चारों वर्णों का समान ही अधिकार दीख रहा है । सुना जाता है कि यह रामायण गायत्री मन्त्र के वर्णन परक है, क्योंकि प्रथमाध्याय के (तपस्वाध्यायनिरतम्) इस प्रथम श्लोक में तकार और (जनश्चशूद्रोऽपि महत्वमीयात्) इस अन्तिम श्लोक में 'यात्' पद के आनेसे तथा चौबीस अक्षरों की गायत्री एवं चौबीस हज़ार ही रामायण के श्लोकबद्ध होने से यह अनुमान किया गया है । गायत्री वेदों का तत्व है, तत्व ही नहीं हृदय है । अतः वेदों से लेकर सब ग्रन्थों के अध्ययन और अध्यापन का सबको समान अधिकार है । और इस रामायण में बड़े २ अश्वमेधादि यज्ञ, कर्म काण्ड एवं तत्त्व ज्ञान की चर्चा सुचारु रूप से वर्णित है, तो क्या जिस शूद्र को रामायण पढ़ने का अधिकार है, उसे तत्वज्ञानी, विवेकी और तपस्वी बनने का अधिकार नहीं है ? क्योंकि पढ़ने से तात्पर्य्य यह होता है कि ग्रन्थ के भाव को समझकर उसके अनुसार अपना आचरण करे । ऐसी अवस्था में जो शूद्र इन ग्रन्थों को पढ़ेगा तो क्या वह उनके अनुसार आचरण नहीं करेगा ? जो कहो कि करेगा तो इस रामायण के अनुसार चलने वालों से कोई तपस्या बाक़ी रह नहीं सकती, इस कारण यह शम्बूक की आख्यायिका रामायण

के सर्वथा विरुद्ध है। इसमें अन्यान्य हेतु भी हैं। आपको मालूम होगा कि दशरथ के बाण से जो बालक मर गया था वह वर्ण सकर शूद्र था, वह वेद शास्त्रों को भली प्रकार जानता था यह आख्यायिका अयोध्या कांड के चौंसठवें अध्याय में आई है। जब राजा दशरथ को उस बालक के हृदय में बाण लग जाने से दुःख हुआ तब वह बालक कातर वाणी से कहने लगा—

न द्विजाति रहं राजन्माभूत्ते मनसो व्यथा।
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप!॥

हे राजन्! मैं द्विजाति नहीं हूं किन्तु वैश्य से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न हुआ हूं इस लिये तुम ब्रह्महत्या का शोक मत करो। इस के पश्चात् उस मृत बालक को राजा दशरथ उसके नेत्रहीन वृद्ध माता पिता के पास ले आये और सब वृत्तान्त कह सुनाया तब इस बालक के पिता के शोक उद्गार को आदि कवि बाल्मीकि जी ने इस प्रकार प्रकट किया है—

कस्यवाऽपर रात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयगमम्।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्व विशेषतः॥
को मांसंध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः।
श्लाघेष्यत्यु पासीनं पुत्रशोक भयार्दितम्॥

अर्थात् अब मैं ब्राह्म मुहूर्त्त में पढ़ते हुए किस के मधुर शास्त्रीय शब्दों को सुनूंगा; हा! अब कौन मुझे स्नान सध्योपासना और हवन करके प्रसन्न करेगा, हे प्रभो यह कैसी दुघटना घटी। इस से यह स्पष्ट है कि वह श्रवण शूद्र होता हुआ भी वेद शास्त्रों को जानता तथा शास्त्रोक्त कर्मों का नित्य किया करता

था। इसके अतिरिक्त शबरी स्त्री की तपस्या का तो आप को पता ही होगा, एक तो शबर जाति ही अति निकृष्ट मानी जाती है क्योंकि उस जाति के हाथ का पानी तक भी नहीं चलता दूसरे उस जाति की स्त्री और भी निकृष्टतम हुई। परन्तु रामायण के देखने से पता लगता है कि यह स्त्री तपस्या करके सिद्ध हो गई। इस के लिये सिद्धा पद देने में बाल्मीकि ऋषि ने तनिक भी संकोच नहीं किया; करते भी कैसे, जबकि उस की तपस्या ने ही उन्हें ऐसा कहने के लिये विवश कर दिया। देखिये, जब महाराज राम और लक्ष्मण शबरी के आश्रम गए तब —

तौ दृष्ट्वातु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलि।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः॥
पाद्यमाचमनीयञ्च, सर्वं प्रादाद्यथा विधि॥

अर्थात् वह सिद्धाशबरी राम और लक्ष्मण को आते देख कर खड़ी होगई और साञ्जलि इन दोनों अभ्यागतों के चरण पकड़ लिये तथा चरण धोने और आचमन करने के लिये जल ले आई। अब श्री रामचन्द्र जी को इस के भक्ति भाव तथा तपस्या को देख कर न तो क्रोध ही आया और न अपनी चमकीली तलवार ही निकाली किन्तु कहते क्या हैं-

तामुवाच ततोरामः श्रवर्णीं धर्म संस्थिताम्।
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः॥

हे तपस्विनि! आपको कोई तपोविघ्न तो नहीं है आप की तपस्या दिन २ बढ़ती तो जाती है। श्रीराम के इन वचनों को सुनकर वह सिद्ध पुरुषों से सम्मता शबरी बोली-

रामेण तापसी पृष्टा, सासिद्धा सिद्धसम्मता ।
शशंस शवरी वृद्धा, रामाय प्रत्यवस्थिता ॥
अद्यप्राप्ता तपस्सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया ॥

हे राम ! आपके दर्शन से आज मुझे तपसिद्धि प्राप्त होगई है इत्यादि । इस आख्यायिका से आपको मालूम होगया होगा कि एक निकृष्ट जाति की स्त्री तपस्या करके सिद्ध पुरुषों में पूजिता हो गई, उस समय किसी ब्राह्मण अथवा और किसी का भी बालक अपने पिता के जीतेजी नहीं मरा और न इसकी तपस्या से किसी और विघ्न की सम्भावना हुई । अब आप ही कहिये कि उत्तर काण्ड में लिखी हुई यह शम्बूक की कथा सर्वथा गप है या नहीं ? जिस समय वैदिक धर्म लुप्त प्राय हो गया था तो शूद्र की एक जाति बन गई थी अर्थात् वंश परम्परानुसार वर्ण व्यवस्था चल पड़ी थी । उस समय में भी भागवतादि पुराण शूद्र को आज कल के समान नीच नहीं मानते थे, इस विषय में श्रीमद् भागवत् का सिद्धान्त है कि महाभारत और अष्टादश पुराण एवं उपपुराण आदि ग्रंथ विशेष कर शूद्रों के लिये ही रचे गये हैं, परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि जो पुराण शूद्रों के लिये बनाये गये थे उन्हें आज बहुत से पंडितमन्य सर्वोत्तम पुस्तक मानते हैं और अपने सिवाय अन्य किसी को उनके पढ़ने का अधिकार नहीं बतलाते । मैंने एक दिन एक नगर में एक सेठ जी के मुख से एक कथा सुनी थी उन्होंने अपनी आप बीती ही सुनाई थी इस लिये मुझे भी विश्वास हो गया । सेठ जी कहने लगे कि महाराज मैं एक दिन अपनी दूकान पर बैठा हुआ भागवत की पोथी पढ़ रहा था । इतने में ही कहीं से हमारे पुरोहित जी आ गये, मैंने उन्हें पालागन कर

के बैठा लिया, वे बैठकर कहने लगे कि क्या पढ़ रहे हो ? मैंने कहा कि महाराज, भागवत देख रहा हूं। बस इतना सुनते ही उन्होंने अपनी भृकुटी सिकोड़ कर एक करली और बोले, शिव शिव, यह तुम अनधिकार चेष्टा क्यों कररहे हो ? तुम्हें भागवत नहीं पढ़ना चाहिये, यदि इच्छा हो तो किसी ब्राह्मण के मुख से सुन सकतेहो, इस पुस्तक को तुम अब अपने पास नहीं रखना। मैंने कहा महाराज, इसे आप ले जाइये, तब वे बोले कि हमारे काम की यह पुस्तक नहीं है इसे जलादो। मैंने कहा महाराज ! पुस्तक जलाना तो बहुत बुरा है यह सुनकर उन्होंने एक दम मेरे हाथ में से वह पुस्तक लेली और बगल में दबाकर चल दिये। फिर न मालूम वह अग्नि के हवाले कर दी गई या अपने घर रखली गई। कहिये ? क्या इस भयानक भूल की प्रबलता का भी कहीं अन्त है ? कितनी बे समझी की बात है। देखिये, उसी भागवत की फल श्रुति में लिखा है—

विप्रोऽधीत्याप्नुयात् प्रज्ञां राजन्योदधि मेखलाम् ।
वैश्यो निधिपतित्वञ्च, शूद्रः शुध्येत पातकात् ॥

भा० स्क० अ० १२–प्र० १२

अर्थात् इस भागवत को पढ़कर ब्राह्मण सुबुद्धि को, क्षत्रिय सम्पूर्ण पृथवी को, वैश्य धन धान्यको प्राप्त होगा और शूद्र सब पापों से छूटकर शुद्ध हो जायगा। इस से सिद्ध है कि शूद्र को भी भागवत आदि पुराण पढ़ने का अधिकार है फिर वैश्य की तो कथा ही क्या ? और इसी भागवत में ॐकार युक्त वेदों के अनेक मंत्र आए हैं जब इस भागवत् को शूद्र पढ़ेगा तो क्या उन मंत्रों को छोड़देगा ? इस से भी सिद्ध होता है कि वेदों से लेकर भागवत पर्यन्त सब ग्रन्थों और सब कर्मों में

शूद्रों का समान अधिकार है। इन अष्टादश पुराणों को सूत जी ने सुना २ कर मुनि मंडल को मुदित किया था और ब्राह्मण कन्या में क्षत्रिय से जो सन्तान होती है वह जाति में सूत कहलाती है जैसा कि मनु ने लिखा है–

(क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः)

इस से भी सिद्ध होता है कि सब पुराण शूद्रों के लिये हैं और दूसरी बात यह भी साबित होती है कि उस समय में भी शूद्र बड़े २ संस्कृत के विद्वान्, ग्रन्थ रचयिता, उपदेश कर्त्ता, ज्ञानी, तथा, तपस्वी होते थे। उस समय शूद्रों की दशा इतनी गिरी हुई नहीं थी जितनी कि आज है। इत्यादि बातें इस सूत और पुराण के सम्बन्ध से सूचित होती हैं परन्तु कहां तक कहें हिन्दू जाति की भूल की कथा अकथनीय है अब तो यह बात है कि—

फूटीं आंख विवेक की, समझ पड़ै नहिं पंथ।
जाती के अभिमान नैं, घेर लिये सद्ग्रन्थ॥

अब तो भूलों को भूलने से ही कल्याण होगा।

एकादश तरंगः

उपसंहार

वृद्ध—(गद्गद वाणी से) महात्माजी, इसमें तो कोई संदेह नहीं कि इस समय भारतवर्ष में भूलों की बड़ी भरमार है। अब इस जाति का उद्धार तभी हो सकता है जब सब भाई एक मन होकर आपके कथनानुसार काम करें।

साधु—वृद्ध जी, प्रकृति की लीला अपरम्पार है इसे अघट घटना पटीयसी कहें तो कुछ अनुचित नहीं, यह कभी तो सूर्य की प्रखर किरणों से पृथिवीतल गत जीवों को विकल बना देती है, और कभी शीत की शीतलता से देह धारियों को कम्पायमान कर देती है, यह कभी चक्रवर्ती को रङ्क का पद देती है तो कभी रङ्क को चक्रवर्ती के सिंहासन पर सुशोभित करती है, यह कभी तो रावण कंस और हिरण्यकश्यप जैसे नर पिशाच राजाओं को उत्पन्न करके अपने भाल पर कलङ्क का टीका लगा देती है तो कभी राम, युधिष्ठिर, मान्धाता और हरिश्चन्द्र जैसे शान्तिप्रिय प्रजा पालक नर नायकों को जन्म देकर वसुमति बन जाती है, ठीक इसी प्रकार वर्त्तमान समय में हिन्दू समाज पर प्रकृति का प्रबल प्रकोप हुआ है। हिन्दू समाज की प्राचीन तथा अर्वाचीन दशा में इसने आकाश और पाताल का अन्तर कर दिया है।

जो समाज कभी सकल गुण धाम कहलाता था और अनुसन्धान करने पर भी कोई अवगुण नहीं मिलता था। जिसकी प्रशंसा करके विदेशी यात्रियों ने भी अपनी निष्पक्षता तथा भावुकता का परिचय दिया है आज उसी समाज की अवस्था का कवि लोगों की लेखनी सखेद होकर इस प्रकार वर्णन करती है।

हिन्दू-समाज कुरीतियों का केन्द्र जा सकता कहा।
ध्रुव धर्म-पथ में कु-प्रथा का जाल सा है बिछ रहा॥
सुविचार के साम्राज्य में कुविचार की अब क्रान्ति है।
सर्वत्र पद पद पर हमारी प्रगट होती भ्रान्ति है॥१॥

यद्यपि उन्नति और अवनति दोनों प्राकृतिक धर्म हैं किन्तु शोक तो तभी होता है जब कि अवनति के बाद फिर उन्नति न हो। जैसे सूर्य्य के अस्त होने से रात हो जाती है परन्तु इस से किसी को शोकोद्गार करने की आवश्यकता नहीं होती, क्यों कि सबको मालूम रहता है कि भगवान् भास्कर अपनी प्रखर किरणों से अन्धकार पटल को छिन्न भिन्न करके हम लोगों को फिर आलोकित करेंगे। कमल के फूल दिन में दिनेश को देख कर तथा मोद मुदित होकर हंसते रहते हैं वेही फूल सायंकाल में मुख बन्द कर लेते हैं और प्रातःकाल फिर उसी विकास को प्राप्त हो जाते हैं। बगीचे में जाकर देखिये जो वृक्ष अपने पत्तों को पकाकर नीचे फेंक देते हैं, उन्हीं वृक्षों पर नए नए लहलहे

पत्ते आकर उन्हें फिर से सुशोभित कर देते हैं। परन्तु भारतीय भाग्य भानु का तो निराला ही ढंग है यह तो पांच हज़ार वर्षों से अस्त होकर फिर चमका ही नहीं। इस हिन्दू जाति के सद्भाव कमलों की तो कथा ही दूसरी है, ये तो जिस दिन से अन्धकार रूपी पङ्क में छिपे हैं, फिर विकसित ही नहीं हो पाये। हिन्दू समुदाय के जातीय उद्यान का तो दृश्य ही बेढ़ब है। इस में तो जब से सद्गुण रूपी पत्तों का पतझड़ हुआ है तब से फिर कभी हरियाली ही नहीं आई। तभी तो कविवर मैथिली शरण जी ने कहा है—

है ठीक ऐसी ही दशा हतभाग्य भारत वर्ष की।
कबसे इतिश्री होचुकी इसके अखिल उत्कर्ष की ॥१॥
पर सोच है केवल यही यह नित्य गिरता ही गया।
जबसे फिरा है दैव इस से, नित्य फिरता ही गया ॥२॥

यह उसी देश की दुर्दशा की कथा है जिसके लिये विष्णु पुराण में लिखा है कि—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तुये भारतभूमि भागे। स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते, भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात् ॥

अर्थात् जो मनुष्य स्वर्ग और अपवर्ग अर्थात् मुक्ति के हेतु

भूत भारत वर्ष में जन्म लेते हैं वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं, क्योंकि ऐसे पुरुष हम देवताओं से भी श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार के गीत स्वर्ग लोक में बैठे हुए देवता गाया करते थे। क्या अब यह वही भारतभूमि है? नहीं २, अब तो यह अनेक आपदाओं के नाटक खेलने की रंगभूमि रह गई है। इस भीषण पतन का कारण अज्ञान ही है और अज्ञान का ही दूसरा नाम भूल है इस के इस देश में आजाने से शील, श्रद्धा, भक्ति, सुमति और सुगति का स्रोत रुक गया। फिर क्या था, हिन्दू जाति में अविनीतता, अनुदारता, स्वार्थ परता, वञ्चकता, असहिष्णुता, कामात्मता, राग, द्वेष, ईर्ष्या, दुर्भावना, अनमेल, कुमति और कुगति ने घर कर लिया। परमात्मा की दया से इस जाति के सुदिन फिर शीघ्र ही आजायं और यह अपने गत गौरव की रक्षा करसके, इसही सदिच्छा से मैंने यह थोड़ा सा वर्णन आप की प्रेरणा तथा आर्य्य जाति की अधोगति को निहारते हुए किया है मेरा विचार किसी पर मिथ्या दोषारोपण अथवा कटाक्ष करने का नहीं है फिर भी जो कुछ कहा है सद्भाव से ही कहा है। कौन ऐसा पाषाण हृदय पुरुष होगा जो अपने देश की दुर्दशा पर दो आंसू न गिरावे। सम्भव है आपके और मेरे इस लघु सम्वाद से कतिपय मानवों के हृदय में सम्वेदना प्रगट हो जावे, और वे अपने देश तथा जाति की भूलों के सुधार में लग ज व, जैसे गृहस्थ लोग अपने घरों को बुहारी से बुहार

कर साफ़ कर लेते हैं ठीक इसी प्रकार अपनी आनि में आई हुई भूलों को भी साफ़ करते रहना चाहिये, तभी कल्याण होगा। इतना कहकर साधु ने मौनावलम्बन कर लिया। प्रातःकाल के चार बजने का समय हो चुका है, मेले में कुछ २ शब्द होने लगा है। अनेक स्त्री पुरुष गंगास्नान के लिये जल के सन्निकट आने लगे हैं। और चारों ओर से जयकारों का शब्द सुनाई देने लगा है। वृद्ध भी इस ब्राह्म मुहूर्त्त में गंगास्नान की इच्छा से जाने के लिये उतावला होकर महात्मा जी को अनेक प्रकार धन्यवाद देने लगा। तथा इस रात्रि को असाधारण रात्रि समझ कर एवं आज मुझे तीर्थ पर आने का फल प्राप्त होगया ऐसा कहकर और साञ्जलि नमो नारायणाय कह कर चला गया। साधु ने लेखक से कहा 'कहिये महात्मा जी, आप का निवास स्थान कहां है? लेखक ने कहा भगवन्! मैं कुछ दिनों से इसी भागीरथी के तट पर निगम आश्रम में रहता हूं। भजन करने के लिये यह बड़ा एकान्त तथा रमणीय स्थान है और भी कई सन्तजन निवास करते हैं तथा गंगा किनारे २ विचरने वाले अनेक वीतराग महात्मा जन दर्शन देते रहते हैं इस आश्रम के द्वार पर एक दोहा लिखा हुआ है—

सन्त समागम को बनी, कुटी गङ्ग के तीर।
मन विहङ्ग उड़ता नहीं, निरखत निरुपम नीर।

कृपया आप भी अपने पदार्पण से इस स्थान को अलंकृत कीजिये। यह सुनकर साधुजी ने तथास्तु कहा और दोनों उने आश्रम की ओर चल दिये

॥ शुभभूयात् ॥
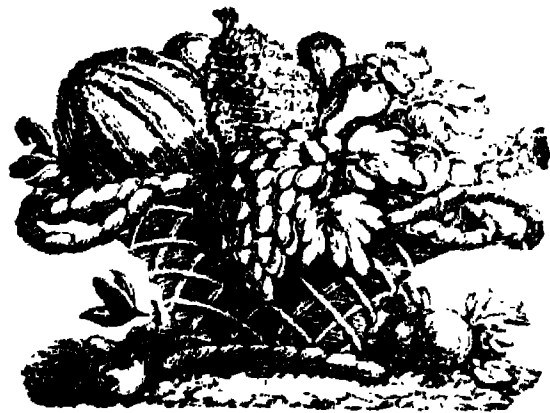
शुद्धाशुद्धपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
दो शब्द	२	०	लिखने की
७	४	मामूल	मालूम
१७	२	मारमान	व्याख्यान
२८	११	इमसशान	श्मशान
४१	२१	०	दबाना
४४	१०	०	लक्षण ये हैं
४५	१३	षड्विधवैशाव	षड्विधवैष्णव
४५	१८	कसामिकैकदेशीत	कापालिकैकदेशीमत
४८	२०	(भल)	(भाल)
४६	२	करत	कहत
५५	११	अर्जिवता	आर्जवता
५७	११	०	है
५७	१८	०	है
५८	८	०	मैं
६४	६	बर्म	धर्म
६७	१६	०	ज्ञान
६८	११	०	के
६६	१७	प्रती	प्रतीत
७०	१०	तभी	कभी
७३	१०	मौञ्जि	०
८५	११	प्रजातेऽसि	प्रजातोऽस्मि
८५	११	उम्रे	उग्रं